१२ | # वैदिक धर्म | ३२

दिसम्बर १९५१

वैदिक धर्म

[दिसम्बर १९५१]

संपादक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर
सहसंपादक
श्री महेशचन्द्र शास्त्री, विद्याभास्कर

विषयानुक्रमणिका

वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.
वी. पी. से ५॥) रु. विदेशके लिये ६॥) रु.

वर्ष ३२ वैदिक धर्म अंक १२

क्रमांक ३६

▲ मार्गशीर्ष, विक्रम संवत् २००८, दिसम्बर १९५१ ▲

वेगवान् वीर

महिषासो मायिनश्चित्रभानवो गिरयो न स्वतवसो रघुष्यदः।
मृगा इव हस्तिनः खादथा वना यदारुणीषु तविषीरयुग्ध्वम्॥

ऋ. १।६४।७

भैंसेके समान शरीर खूब बडा, किन्तु कर्तव्यपालन करनेमें अत्यन्त कुशल, अत्यन्त तेजस्वी, पर्वतोंके समान अपने स्वयंके बलसे स्थिर रहनेवाले, अत्यन्त वेगसे चलनेवाले, हाथी एवं मृगोंके समान वनके वृक्षोंको खा अर्थात् तोडमरोड देनेवाले हैं; (क्योंकि वे तांबे जैसे रंगवाले सशक्त घोडे अपने रथको जोडते हैं) अतः ऐसे वीरोंका वेग बहुत प्रचण्ड हुआ करता है।

हमारे वीर भैंसेके समान हृष्टपुष्ट होने चाहिये, किन्तु अपने कर्तव्योंका पालन करनेमें अत्यन्त कुशल होने चाहिये अर्थात् वे कभी भी सुस्त न होने चाहिये। वे तेजस्वी एवं उत्साही होने चाहिये और अपनी शक्तिसे अपने स्थानपर स्थिर रह सकनेवाले होने चाहिये। आक्रमण करनेमें उन्हें अत्यन्त वेगवान् होना चाहिये और अपने आक्रमणसे शत्रुको नष्टभ्रष्ट कर देनेवाले होने चाहिये, जिस प्रकार कि हाथी वनोंको तोड डालता है उसी प्रकार उसे शत्रुओंको नष्टप्राय कर देना चाहिये तथा विजयी होना चाहिये।

९- **केन्द्र-** जहाँ कहीं कमसे कम १० परीक्षार्थी होंगे वहाँ भी केन्द्र स्वीकृत हो सकेगा। किन्तु साधारणतया उस केन्द्रके तीन मीलके आसपास समितिका स्वीकृत कोई दूसरा केंद्र न हो। विशारदके लिये स्थायी केंद्र निश्चित हैं। उनके अतिरिक्त विशारद परीक्षा अस्थायी रूपसे उन केन्द्रोंमें हो सकेगी, जहाँ हाईस्कूल होगा तथा इस परीक्षाके कमसे कम १० परीक्षार्थी होंगे। निश्चित विशारद केन्द्रोंमें भी विशारदके पांच परीक्षार्थी होना अनिवार्य हैं।

१०- नया केन्द्र- समितिके स्वीकृत केन्द्रोंके अतिरिक्त परीक्षाका नया केन्द्र यदि कोई खोलना चाहे तो उसके लिये परीक्षा तिथिसे कमसेकम ढाई महीने पहले प्रार्थनापत्र समिति कार्यालय पारडी पहुँचाना चाहिये।

११- **केन्द्रव्यवस्था व स्थान-** साधारणतया परीक्षायें चलानेका प्रबन्ध किसी स्थानीय शिक्षणालयमें किया जाना चाहिये और उसके प्रधान अध्यापक सामान्यतः व्यवस्थापक बनाये जायँ। केंद्र-व्यवस्थापक अपने केन्द्रके परीक्षार्थियोंकी सुविधाकी दृष्टिसे स्थानीय भिन्न भिन्न शिक्षण संस्थाओंमें प्रबंध कर सकते हैं; जिनके निरीक्षक नियुक्त करनेकी व्यवस्था उन्हीं केंद्र व्यवस्थापकोंके द्वारा होगी। किन्तु उनको अपने इस विशेष प्रबन्धकी सूचना परीक्षातिथिसे १५ दिन पूर्व पारडी भेजकर परीक्षामन्त्रीको करनी होगी।

१२- **प्राप्ताङ्क सूची-** जो उत्तीर्ण परीक्षार्थी अपने अलग अलग प्रश्नपत्रोंके प्राप्ताङ्क मंगाना चाहेंगे उन्हें चार आने शुल्क भेजना होगा। अनुत्तीर्ण परीक्षार्थियोंसे शुल्क नहीं लिया जायगा।

१३- **पुनर्निरीक्षण-** जो अनुत्तीर्ण परीक्षार्थी अपनी उत्तर पुस्तकोंका पुनर्निरीक्षण करवाना चाहें उनको परीक्षा-फल-प्रकाशन तिथिसे २० दिनके अन्दर प्रत्येक पुस्तकके लिये आठ आना निरीक्षण शुल्क भेजते हुए अपना पूरा नाम, क्रमसंख्या और प्रश्नपत्र संख्या देकर प्रार्थनापत्र भेजना चाहिये।

निरीक्षणमें केवल इतनाही देखा जायगा कि प्रत्येक प्रश्नके अंक दिये गये हैं या नहीं।

१४- **प्रमाण पत्र-** परीक्षा-फल प्रकाशित होनेके पश्चात् साधारणतः डेढ मासके अन्दर उत्तीर्ण परीक्षार्थियोंमें वितरण करनेके लिये केंद्रव्यवस्थापकके पास समिति कार्यालय पारडीसे प्रमाणपत्र भेजे जायँगे।

सूचना- (क) विशारदका उपाधि-पत्र अवधिके अन्दर नहीं मिल सकेगा। जो परीक्षार्थी अवधिके भीतर अपने उत्तीर्ण होनेके लिये प्रमाण-पत्र चाहेंगे। उनको उसके लिये १ रु० विशेष शुल्क देनेपर परीक्षा मन्त्री अपने हस्ताक्षरसे प्रमाणपत्र भेज सकेंगे।

(ख) जो उत्तीर्ण परीक्षार्थी बिना सूचना दिये प्रमाणपत्र वितरणोत्सवमें सम्मिलित होकर प्रमाणपत्र न लेंगे, उनको बादमें प्रमाणपत्र प्राप्त करनेके लिये केंद्र व्यवस्थापकके पास चार आने जमा करने होंगे।

१५- **प्रमाणपत्र-वितरण-** केंद्र व्यवस्थापक, प्रत्येक परीक्षा फल प्रकाशित होनेके २॥ महीनेके अन्दर एक विशेष समारम्भ कर परीक्षार्थियोंमें प्रमाणपत्र बाटेंगे। किसी कारणवश वैसा न हो सके तो परीक्षार्थी उस अवधिके १० दिनके बाद केंद्र-व्यवस्थापकसे अपना प्रमाणपत्र ले सकेंगे। आवश्यकतानुसार चार आना देनेपर केंद्र व्यवस्थापकसे प्रमाणपत्र पहले भी मिल सकेगा।

१६- **प्रमाणपत्रकी प्रतिलिपि-** प्रमाणपत्रके नष्ट हो जानेपर या खो जानेपर कोई परीक्षार्थी पुनः अपना प्रमाणपत्र लेना चाहे तो उसको प्रारम्भिणी प्रवेशिका एवं परिचयके लिये आठ आना तथा विशारदके लिये १, रु. शुल्क भेजते हुए अपना नाम परीक्षा, वर्ष, मास, क्रमसंख्या आदि विवरण भेजना चाहिये।

(स्वाध्याय-मण्डल द्वारा संचालित)

आगामी परीक्षायें

(मध्यप्रान्त (बरार), मध्यभारत, हैद्राबादराज्य, राजस्थान, पंजाब, उत्तरप्रदेश, बिहार एवं आसामके लिये)

१– उपर्युक्त प्रान्तोंके लिये संस्कृतभाषाप्रचार समितिकी परीक्षायें **ता० २-३ फरवरी** (शनि-रवि) सन् १९५२ ई० को होंगी।

२– परीक्षार्थियोंको चाहिये कि वे अपने **आवेदनपत्र ८ दिसम्बर १९५१ ई०** तक केन्द्र-व्यवस्थापकको दे दें।

३– केन्द्र-व्यवस्थापक महोदय **ता० १४ दिसम्बर १९५१ ई० तक सम्पूर्ण आवेदनपत्र** केन्द्रीय कार्यालय पारडी पहुँचा देवें।

(गुजरात, महाराष्ट्र, तथा मद्रासप्रान्तके लिये)

१– उपर्युक्त प्रान्तोंके लिये सं० भा० प्र० समितिकी परीक्षायें **ता० ५-६ अप्रैल (शनि-रवि) सन् १९५२ ई० को होंगी।**

२– परीक्षार्थियोंको चाहिये कि वे अपने **आवेदनपत्र १६ फरवरी १९५२ ई० तक** केन्द्रव्यवस्थापकको दे दें।

३– केन्द्रव्यवस्थापक महोदय **ता० २६ फरवरी १९५२ ई० तक** सम्पूर्ण आवेदनपत्र एकसाथ केन्द्रीय कार्यालय पारडी पहुँचा देवें।

आवेदनपत्र भरनेके नियम

१ परीक्षार्थीको आवेदन-पत्र तथा प्रवेश-पत्र देवनागरीमें ही स्वच्छाक्षरोंमें एवं स्वयं भरना होगा।

२– यदि परीक्षार्थीको परीक्षामें सीधे बैठनेकी स्वीकृति मिली हो तो उन्हें अपना स्वीकृति-पत्र आवेदन-पत्रके साथ ही नत्थी करके भेजना चाहिये।

३– परीक्षार्थीको अपना परीक्षा-शुल्क परीक्षा तारीखसे कमसे कम डेढ महिना पहले, अपने केंद्रव्यवस्थापकके द्वारा (मनि-आर्डरसे) समिति कार्यालय पारडीमें भिजवाना होगा। जबतक शुल्क नहीं मिल जायगा, आवेदन-पत्र स्थगित समझा जायगा। इसलिये शुल्क आवेदनपत्र भेजनेसे पहले ही भेजा जाय। यदि अवधिकी अन्तिम तिथितक भी शुल्क न पहुँचेगा तो आवेदन पत्र अस्वीकृत समझा जायगा।

४– परीक्षा-शुल्कके मनिआर्डर कूपनपर केंद्रका नाम और शुल्कका विवरण साफ साफ अवश्य लिखना चाहिये।

५–१० से कम परीक्षार्थियोंके लिये केंद्र स्वीकृत नहीं किया जायगा। यदि किसी स्वीकृत केंद्रमें किसी समय परीक्षार्थियोंकी संख्या १० से कम हो जायेगी तो वहाँके आवेदकोंको परीक्षा मन्त्रीकी सूचनाके अनुसार पासके किसी केंद्रमें जाकर परीक्षा देनी होगी।

६– जिस आवेदन-पत्रपर केंद्र-व्यवस्थापकके हस्ताक्षर न होंगे वह स्वीकृत नहीं किया जायगा।

७– परीक्षार्थीको परीक्षा संबंधी सभी नियमोंकी जानकारी कर लेना तथा तदनुसार व्यवहार करना होगा।

८– **आवेदनपत्र**– इन परीक्षाओंके लिये परीक्षार्थियोंको, समितिकी ओरसे छपे हुए विशेष फार्म जिसका मूल्य दो आना है, भरकर साधारणतया परीक्षा-तिथिसे **दो महिने** पहले शुल्कके साथ केंद्रव्यवस्थापकके द्वारा समिति कार्यालय पारडी (सूरत) पहुँचा देने चाहिये। सामान्यतया वे ही आवेदन-पत्र स्वीकार किये जावेंगे, जिनपर किसी न किसी प्रमाणित प्रचारक के हस्ताक्षर होंगे।

अशुद्ध, अपूर्ण तथा अवधिके बाद प्राप्त आवेदन पत्र स्वीकार नहीं किये जायँगे।

आवेदन-पत्र स्थानिक केंद्रव्यवस्थापकोंके द्वारा भेजे जाय।

एक केन्द्रसे आनेवाले सभी आवेदनपत्र एक साथ ही आने चाहिये।

केन्द्रव्यवस्थापक महानुभावोंकी सेवामें

१– महाराष्ट्र, गुजरात एवं मद्रासप्रान्तको छोडकर अन्य समस्त प्रान्तोंके लिये संस्कृत परीक्षाओंकी तारीख **१-३ फरवरी १९५२ ई.** निश्चित की गई है।

२– परीक्षार्थियोंको अपने आवेदनपत्र भरकर ता० ८ दिसम्बर तक अपने केन्द्र-व्यवस्थापकके पास दे देने चाहिये।

३– केन्द्र-व्यवस्थापकोंको चाहिये कि वे अपने केन्द्रके सम्पूर्ण आवेदनपत्र शुल्कसहित ता० १४ दिसम्बर तक पारडी कार्यालय अवश्य भिजवा दें।

४– गत परीक्षाओंमें जिन केन्द्रोंसे परीक्षार्थी सम्मिलित न हो सके वहाँके केन्द्र-व्यवस्थापक महानुभावोंको इस बातके लिये पूरा प्रयत्न करना चाहिये कि वहाँ संस्कृत प्रचारका यह महत्त्वपूर्ण एवं पवित्र कार्य शीघ्र प्रारम्भ हो एवं अधिकसे अधिक परीक्षार्थी इन परीक्षाओंमें सम्मिलित हों। क्योंकि **संस्कृत भाषाका प्रचार हमारी जागृतिका प्रतीक है।**

५– केन्द्र-व्यवस्थापकोंको चाहिये कि वे अपने केन्द्रके उपयोगके लिये परीक्षा-आवेदनपत्रोंको पहलेसे ही मंगाकर रख लें, जिससे किसी प्रकारकी असुविधा न हो।

६– प्रत्येक केन्द्रमें हम अपने मासिक पत्र (हिन्दी, मराठी वा गुजराती) नियमित रूपसे भेजते हैं जिससे यथासमय आवश्यक सूचनायें सबको मिल जाँय।

७– यदि किसीको हमारे मासिक न मिलते हों तो वे हमें सूचित करें।

८– इन मासिकोंमें प्रकाशनार्थ अपने केंद्रोंके समाचार भी प्रत्येकको यथावसार अवश्य ही भेजने चाहिये। हम उन्हें सानन्द प्रकाशित करेंगे।

पुस्तक परिचय

१– त्रैतवाद संशोधन

लेखक व प्रकाशक– श्री **नाथुलालजी गुप्त** वैदिक धर्म विशारद– शिवपुरी (मध्यभारत) पृष्ठ संख्या ५२ मूल्य पांच आने। प्रस्तुत पुस्तकके विषयमें लेखकने लिखा है कि 'यह पुस्तक आर्यसमाजमें क्रान्ति करनेवाली नई खोज है। इस पुस्तकको तैयार करनेमें अधिकतर महर्षि दयानन्दकृत ग्रन्थ व इन ग्रन्थोंके इतिहास तथा आर्यमुनिजी कृत भाष्यसे सहायता ली गई है।... ... ... यदि विद्वत् मण्डल इस पुस्तिकाको पढकर इस **वेदविरुद्ध एवं पतनकारी त्रैतवादके संशोधनमें** कुछ भी प्रयत्न करेगा तो मैं अपने प्रयत्नको सफल समझूंगा'।

हम लेखकके ही शब्दोंमें कहना चाहते हैं कि 'पाठक इस पुस्तकको आर्य समाजके चतुर्थ नियमानुसार पक्षपात रहित अन्तः-करण द्वारा सारग्राही दृष्टिसे पढनेका कष्ट करें'

२– सन्तति निग्रह

लेखक– श्री **रघुनाथ प्रसादजी पाठक**। प्रकाशक-आर्य साहित्यसदन देहली शाहदरा। पृष्ठ संख्या ११२ मूल्य १-४-० प्रस्तुत पुस्तकमें जिन विषयोंपर प्रकाश डाला गया है वे निम्नप्रकार हैं—

१– सन्तति-निग्रहका सांस्कृतिक आधार। २– बच्चे। ३– विवाह। ४– संयम (१) ५– संयम (२) ६– वीर्यरक्षा। ७– कृत्रिम उपकरणोंका डाक्टरी खण्डन। ८–रोग और कृत्रिम साधन। ९– जन संख्या। १०– भारत और जनसंख्या।

आजके प्रत्येक भारतीय नागरिकके लिये यह पुस्तक अत्यन्त मननीय है। इस प्रकारका विशुद्ध, जनहितकारी एवं आधुनिक साहित्य इस युगके लिये अतीव आवश्यक है। यदि विद्वान् लेखकके द्वारा इस विषयपर अन्य ग्रन्थ भी लिखे जा सकें तो राष्ट्रका बहुत बडा लाभ होगा। ऐसे ग्रन्थ-रत्नोंका प्रचार अधिकसे अधिक होना चाहिये तथा इस ग्रन्थके विचारोंका प्रसार शिक्षित-अशिक्षित सभीमें खूब होना चाहिये।

भारतीय संस्कृतिका स्वरूप

[लेखांक ८]

(लेखक— श्री. पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर)

रामका आदर्श

वैदिककालका आदर्शपुरुष 'राम' है। वाल्मीकि ऋषिने नारद ऋषिकी अनुमतिसे आर्योंके उद्धारके लिये जिस आदर्शपुरुषका वर्णन किया है वह राम है। अतः यदि भारतका उत्कर्ष करना हो तो घरघरमें रामचरित्रके मनन करनेका प्रयत्न करना चाहिये। इसी प्रकार महाभारतका पठन भी घरघरमें होना चाहिये। शिवाजी जैसे वीर पुरुषोंका इस देशमें निर्माण करनेवाले ये दो ग्रन्थ ही हैं। यदि इन दो अपूर्व ग्रन्थोंकी हम उपेक्षा करेंगे तो भारतीय संस्कृति नामक कोई वस्तु, हमारे लिये स्मरण रखना भी कठिन होजायेगा। इतना अधिक महत्व इन ग्रन्थोंका है। ये दोनों ही महाकाव्य राष्ट्र-निर्माण करनेवाले हैं तथा राष्ट्रीय विभूतियोंको जन्म देनेका सामर्थ्य आज भी इन ग्रन्थोंमें है। जिन्हें यह जाननेकी इच्छा है कि 'भारतीय संस्कृति क्या है?' उन्हें चाहिये कि वे इन ग्रन्थोंका वाचन एवं मनन करें।

रामराज्यका कलंक ?

इस प्रकारके इस रामचरित्रपर आधुनिक लेखक एवं विचारक कुछ आक्षेप किया करते हैं। उन आक्षेपोंमें 'शंबूकको रामने दण्ड दिया' यह आक्षेप मुख्य है। हम इसीपर कुछ विचार करेंगे।—

"शंबूक नामक एक शूद्र कुलोत्पन्न युवक तपस्या करता था। इस कारण रामराज्यमें पातक उत्पन्न हुआ। उस पापके कारण एक ब्राह्मणके पुत्रकी मृत्यु होगई। वह ब्राह्मण अपने पुत्रका शव रामके राजमहलके सामने लेगया तथा रामराज्यकी निन्दा करने लगा। रामने इस घटनाका अनुसन्धान किया तो उसे पता लगा कि इस अपकृत्यका कारण शंबूक है और इसलिये रामने उसे प्राण दण्ड दिया।" यह कथा संक्षेपसे इस प्रकार है।

ब्राह्मण ब्राह्मणेतर वादमें ब्राह्मणोंके विरुद्ध जनताको भडकानेके लिये कुशल वक्ता इस कथाका उपयोग बहुत अच्छे ढंगसे करते हैं! आजके बडे बडे विचारक एवं सम्पादक भी इस कथाके कारण रामचरित कलंकित होगयाँ, ऐसा मनःपूर्वक मानते हैं तथा 'रामराज्य' चाहिये ऐसा कहते ही 'जिसमें शंबूकका वध किया गया वही ना तुम्हारा रामराज्य' ऐसा कहकर इस रामराज्यके विषयमें अपनी अरुचि भी व्यक्त करते हैं! इसलिये यह कथा पूरे स्पष्टीकरणके लिये हमने जानबूझकर ली है। इस कथामें इन मुद्दों को विचार करनेके लिये लिया जासकता है—

१- शंबूक नामक शूद्रजातिके लोगोंने स्वयंके 'उत्पादक खेतीके काम' को छोड दिया तथा 'अनुत्पादक तपस्याका काम' करने लगे।

२- राष्ट्रमें अनुत्पादक धन्देके लोगोंका प्रमाण उत्पादक धन्देके लोगोंकी तुलनामें जितना होनेपर उत्पादक लोगों-पर अत्यधिक भार न पडे इतनाही वह रहे, इस बातका प्रबन्ध रखना राष्ट्रसंचालकका काम है।

३- उत्पादक एवं अनुत्पादक धन्दोंके लोगोंका प्रमाण राष्ट्रमें बिगडना न चाहिये। विशेषतः 'अनुत्पादक धन्देके लोगोंकी संख्या राष्ट्रमें बढनी नहीं चाहिये'।

४- यदि अनुत्पादक लोगोंकी संख्या राष्ट्रमें बढजाय तो उनके पालनका भार उत्पादक लोगोंपर पड जाता है तथा इसके कारण राष्ट्रकी अर्थव्यवस्था बिगड जाती है।

५- राष्ट्रकी अर्थव्यवस्था बिगड जानेसे अपमृत्यु, अका-

मृत्यु तथा बालमृत्युकी संख्या बढ जाती है। दुर्बलोंपर ही अपमृत्युका पहाड टूटता है।

६- अतः राष्ट्रीय शासनको चाहिये कि अपने राष्ट्रकी अर्थव्यवस्था बिगडने न दे तथा ऐसी व्यवस्था करे जिससे कि उत्पादक एवं अनुत्पादक लोकसंख्याका अनुपात बराबर रहे।

राष्ट्रकी, विशेषतः भारतराष्ट्रकी सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था जातिव्यवस्थाके साथ उद्योगधन्दे जुडे होनेके कारण जातिव्यवस्थासे सम्बन्धित थी। एक जातिके लोग यदि अपना कार्य बन्द कर दें तो सारे राष्ट्रकी अर्थव्यवस्था इसके कारण अव्यवस्थित होना सम्भव है। यह बात आज सबकी समझमें सरलतापूर्वक आसकती है। आज कोई भी जातिव्यवस्था नहीं मानता एवं ब्राह्मण भी चर्मकार, लुहार आदिका धन्दा करने लगे हैं। चर्मकार एवं लुहार उपदेशक बन रहे हैं। यह है आजकी परिस्थिति। यह अच्छी है या बुरी है? यह प्रश्न स्वतंत्र है। किन्तु जिस कालकी बातपर हम विचार कर रहे हैं उस कालमें जातिका धन्देके साथ सम्बन्ध था। अतः यदि एक जातिने अपना धन्दा छोड दिया तो उसका परिणाम राष्ट्रपर अवश्य होता और यदि ऐसा होने लगे तो राष्ट्रकी सरकार द्वारा उसका नियन्त्रण करना ही पडता है।

धन्दोंका राष्ट्रीयीकरण

आज धन्दोंका जो राष्ट्रियीकरण होरहा है या होनेवाला है वह वैयक्तिक स्वातन्त्र्यपर एक प्रकारका बन्धन ही है। रूसमें व्यक्तिको स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है। इंग्लैंड एवं अमेरिकामें नियन्त्रणके उपाय खोजनेमें विचारवान् व्यस्त हैं। तात्पर्य यह कि चाहे जो व्यक्ति चाहे जो धन्दा करने लगे एवं चाहे जितना उत्पादन करने लगे अथवा उत्पादनमें बाधा पहुँचाने लगे तो उसका नियन्त्रण राष्ट्रशासकों द्वारा होना ही चाहिये। यह तत्व आज भी मान्य है।

जातिशः धन्दोंकी व्यवस्था

आर्यशासन व्यवस्थाके अन्तर्गत जातियोंमें धन्दे विभक्त थे। एक जाति धन्दा दूसरा न कर सके, ऐसी जातिशः नियन्त्रण व्यवस्था थी। इस कारण प्रत्येकके धन्देको स्वयमेव ' संरक्षण ' प्राप्त होजाता था। आज यह कार्य राष्ट्रीय नियोजन द्वारा करना पड रहा है। अन्ततः तत्व यही निष्पन्न होता है कि राष्ट्रमें उत्पादनका प्रमाण नियन्त्रित रहना चाहिये।

ब्राह्मणोंका व्यवसाय-पूजापाठ, जपतप, प्रवचन, कीर्तन अनुत्पादक व्यवसाय है। क्षत्रियोंका व्यवसाय दूसरोंकी रक्षा करना है, यह भी अनुत्पादक है; किन्तु अत्यावश्यक है। ब्राह्मणोंका कार्य मानसिक शान्ति उत्पन्न करना एवं जनतामें आध्यात्मिक आनन्द उत्पन्न करना है। यदि ब्राह्मण न रहे तो जनताकी आध्यात्मिक भूख अतृप्त रहेगी, किन्तु यदि अन्य व्यवसाय व्यवस्थित चलते रहे तो समाजकी कोई विशेष हानि न होगी। इसीलिये ब्राह्मणी धंदा करनेवालोंकी संख्या समाजमें बढनी नहीं चाहिये; क्योंकि इस जातिके पोषणका भार अन्य जातिके लोगोंपर पडेगा। वह किसी मर्यादातक ही लोगोंके लिये सह्य होगा।

जातिशः ब्राह्मण चालीस करोडमेंसे दो करोड अर्थात् लगभग बीसमें एक इस प्रकार है। इस एकके पालनका भार बीसपर है। वह उनको सहन होना सम्भव है; किन्तु यदि ये अनुत्पादक लोग राष्ट्रमें बढ जांय और अनुपातसे अधिक इनका प्रमाण होजाय तो जनताका बोझ भी उसी अनुपातसे बढ जायेगा। अतएव ब्राह्मणोंके पीछे शम, दम, ब्रह्मचर्य आदि नियम लगा दिये हैं। इन नियमोंके कारण ब्राह्मणोंकी संख्या नहीं बढ पाती एवं अन्य जातियोंकी बढ सकती है। इस जातिके पीछे यम, नियम विशेषतः ब्रह्मचर्यादिका नियन्त्रण रखकर अनुत्पादक जातिकी संख्या मर्यादित रखनेकी योजना पूर्वाचार्योंने बनाई थी। इससे यह सिद्ध होता है कि उन आचार्योंको राष्ट्रीय अर्थशास्त्रके नियम विदित थे। आज इसी वर्ण व्यवस्थाको ' जातिभेद ' कहकर लोग निन्दित करते हैं; किन्तु यह ' भेद ' न होकर ' व्यवस्था ' थी और इसके पीछे अर्थव्यवस्थाका यह रहस्य था।

आज व्यक्ति स्वातन्त्र्यका युग है, ऐसा कहा जाता है; किन्तु आज भी धन्दोंका राष्ट्रीयकरण करके राष्ट्रकी आवश्यकतानुसार उनका नियमन किया जा रहा है। यदि ऐसा न हो तो राष्ट्रपर बहुत बडी विपत्ति आसकती है। आजका अर्थ शास्त्र उस आपत्तिका निराकरण कुछ भिन्न प्रकारके नियन्त्रण रखकर कर रहा है। इससे पता लगता है कि इस आपत्तिको टालना बहुत आवश्यक है।

आषाढीकी यात्रा

अधिक स्पष्टीकरणके लिये हम एक उदाहरण लेंगे। वर्तमान सरकार लोकहितके लिये सावधान है। हमें अपने विधानके अनुसार विचार, भाषण, उपासना एवं व्यवहार आदिकी स्वाधीनता प्राप्त है। इस प्रकार आज हम पूर्णतः स्वतन्त्र हैं यह निःसन्देह है और इस अर्थमें हम आज सुखी हैं।

आषाढी एकादशीको विठोबा (दक्षिणके एक प्रसिद्ध तीर्थके देव) के दर्शन करनेके लिये पैदलही पंढरीकी यात्रा करना सोलह आने पुण्यकर्म है, इसमें सन्देह नहीं। इस पुण्यकर्मको यदि हम सामुदायिक रूपसे करनेका निश्चय कर लें तो उसका राष्ट्रपर क्या परिणाम होगा यह विचारणीय है। गांवके जो लोग पैदल चल सकते हैं, उन्हें यह यात्रा करनी है। कोई भी ऐसा मनुष्य जो पैदल चल सकता है, गांवमें नहीं रहेगा ऐसा निश्चय करके यदि रत्नागिरी जिलेके कुछ ग्रामीण लोग आषाढी एकादशीसे २० दिन पूर्व यात्राके लिये निकल पडें तो उन्हें फिर लौटकर आनेके लिये डेढ दो महिनेका समय तो लगेगा ही। गांवमें पीछे वे बूढे एवं अशक्त ही रह जायगे जो चल नहीं सकते। यह समय खेतमें बीज बोनेका है। ऐसे समय काम करनेवाले सब पंढरीकी यात्राके लिये यदि चले जाते हैं तो 'अधिक अन्न उपजाओ' की बात तो दूर रही, किन्तु प्रतिवर्ष जो बोया जाता है वह भी नहीं बोया जावेगा तथा अन्न कम उत्पन्न होनेके कारण जनता भूखों मर जायेगी, अप मृत्युकी संख्या बढ जाएगी और सरकारको इस ओर ध्यान देना ही पडेगा।

वाचकोंको विचार करनेपर विदित होजायगा कि यदि कुछ गांव इस प्रकार आषाढीकी यात्रा करनेके लिये तैयार होगये तो हमारी लोकप्रिय 'खेर सरकार' भी ऐसे सामुदायिक विठ्ठल दर्शनपर प्रतिबन्ध ही लगा देगी! इतना ही नहीं अपितु हम सबको सरकारके इस कृत्यका अनुमोदन भी करना होगा! उपासना विषयक 'स्वातन्त्र्य' कानूनमें ही रहेगा तथा इस प्रकारके यात्रियों पर हमारी 'खेर सरकार' को भी सेना, रक्षक आदि भेजकर प्रतिबन्ध लगाना पडेगा।

जबतक खेतीका काम चलता रहता है और जबतक प्रत्येक गांवमेंसे बहुत थोडे और अपेक्षणीय संख्यामें ही लोग विठ्ठलके दर्शनके लिये जाते हैं तभीतक उपासना-स्वातन्त्र्य है। इस मर्यादाका यदि जनताद्वारा उल्लङ्घन हुआ तो उस उपासना-स्वातन्त्र्यपर सरकारी नियन्त्रण होनाही चाहिये तथा इस प्रकारका नियन्त्रण करना राजसत्ता का आवश्यक कार्य ही है। जो लोग आज रामपर दोषारोपण करते हैं वे सम्भवतः इस राजकीय अर्थव्यवस्थाकी समताके विषयमें विचार ही नहीं करते। उनके सामने तो केवल 'उपासना स्वातन्त्र्य पर रामने आघात किया' यही एकमात्र रहता है। ये लोग रामराज्यका निर्माण कर ही न सकेंगे।

विठ्ठलके दर्शन आषाढी एकादशीके दिन करना अवश्य ही पुण्यप्रद है; किन्तु वही यदि ठीक बोनीके समय सारा समाज करने लग जाय तो 'सामुदायिक पाप' बन जायगा तथा यह एक प्रकारकी राष्ट्रपर महान् विपत्तिही आपडेगी एवं जिस राष्ट्रकी अर्थ व्यवस्था इस प्रकार लडखडा जायेगी उसका तारण कठिन ही है।

वैयक्तिक एवं सामाजिक पापपुण्य

अब पाठक इस बातपर विचार करें कि बुद्ध धर्म एवं सम्राट् अशोकने क्या किया? जो भिक्षु एवं भिक्षुणी बनते थे उनका सम्मान तथा उनका पालन-पोषण सरकारी खजानेमेंसे होता था। यह सम्राट् अशोककी व्यवस्था थी। अतः सभी लोग भिक्षु, सभी स्त्रियाँ भिक्षुणी बनने जैसी परिस्थिति इस समय निर्माण होगई थी। भिक्षु बन जानेपर नियन्त्रण नहीं रहता था। प्रति गृहस्थसे इस प्रकारके एक दो संन्यासी बन जानेकी प्रथाही पड गई थी। यह प्रकार उत्तर हिमालयकी ओर आज भी दिखाई पडता है। भिक्षुओंकी- अनुत्पादक धन्देवालोंकी- संख्या-वृद्धि नियन्त्रित न रखनेके कारण राष्ट्रकी कितनी हानि होगी इसका विचार तब नहीं किया गया; अपितु स्वयं राजा एवं राज्यशासनकी ओरसे ही उन्हें प्रोत्साहन मिला; अतः यह स्वाभाविक था कि भिक्षुओंकी संख्या राष्ट्रमें बढ जाय। इस प्रकार परिणाम यह हुआ कि उत्पादक धन्दे ठप हो गये। ऐसी स्थितिमें राष्ट्रके लिये एक विपत्तिका समय ही उपस्थित होगया। इस विपत्तिकी कल्पना पाठक कर सकते हैं।

उपासना स्वातन्त्र्यकी हवा हमें न लगे तथा उत्पादक जनसंख्या कम होकर अनुत्पादक जनसंख्याकी वृद्धि न होने पाये इस बातका विचार राष्ट्रीय अर्थशास्त्रकी दृष्टिसे पाठकोंको करना चाहिये। अनुत्पादकोंका सम्मान अथवा सरकारकी ओरसे उनका पालनपोषण होना राष्ट्रके लिये बहुत ही हानिकर है।

बुद्धधर्मानुयायी अशोकके समय यही हुआ। सम्पूर्ण भारतकी आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार उध्वस्त होगई, अनुत्पादक भिक्षुओंकी संख्या बढने लगी। इन सब बातोंकी रोकथाम करनेके लिये उपर्युक्त कथाओंका जन्म हुआ होगा। इन कथाओंका जनतापर अच्छा प्रभाव हुआ। युगकी परिस्थितिके अनुसार राष्ट्रोद्धारके उपाय भिन्न भिन्न हुआ करते हैं। आज वे भिन्न प्रकार के हैं। किन्तु सबका लक्ष्य अर्थ-साम्य का निर्माण करना ही है।

ऐसी ही जरत्कारुकी भी कथा है। आजन्म ब्रह्मचर्यका पालन नहीं करना चाहिये, विवाह करके संतति उत्पन्न करनी ही चाहिये। यही उस कथाका तात्पर्य है। यहाँ भी बुद्धकी राष्ट्रीय आपत्तिका निराकरण करनेके लिये ही बनाई गई थी। संन्यासी एवं सन्यासिनें अधिक बनने लगे, व्यभिचार बढे, गृहस्थाश्रम छिन्न भिन्न होगया। इस भयंकर राष्ट्रीय आपत्तिको दूर करनेके लिये, बिना सन्ततीके शुभगति नहीं मिलती, जैसी कथायें एवं गृहस्थाश्रमोंके आकर्षक वर्णनकी रचनायें करनी ही पडी। यह कार्य तत्कालीन अग्रणी पुरुषोंने करके समाजकी रक्षा की।

शंबूककी कथा रामके राज्यशासन कालकी है अथवा नहीं? यह प्रश्न इतिहासका है। यह कथा बुद्धोत्तर कालकी है और वह बुद्धके कारण उत्पन्न हुई अनुत्पादक जनसंख्याकी रोकथाम करनेके लिये लिखीगई होगी, ऐसा हमारा मत है। ऐसी कथाओंका उस समय इष्ट परिणाम भी हुआ है।

ऐसी कथायें किसलिये रची गईं? इसका विचार न करके, सामाजिक, एवं राष्ट्रीय परिस्थितिकी दृष्टिसे इसका विचार न करके ' शूद्र एवं ब्राह्मण ' इस हीन द्वन्द्व दृष्टिसे ही जो विचार करेंगे वे चाहे जो निर्णय दें; किन्तु यदि आज भी अनुत्पादक धन्दोंमें वृद्धि होने लग जाय तो हमारी लोकप्रिय काँग्रेस सरकार भी रामकी तरह ही उसका नियन्त्रण करेगी, हमें यहाँ इतना ही कहना है। अतएव पुराणोंका विचार सामाजिक परिस्थिति को ध्यानमें रखकर ही करना चाहिये।

ऋषिमुनिगोंने वर्ण जाति उनके निश्चित कर्तव्योंका निर्धारण करके, राष्ट्रकी अर्थव्यवस्थाको ठीक रखनेके लिये नियतकी थी। यदि वह आज अन्य प्रकारसे रखनी होतो रक्खी जासकती है; किन्तु अनुत्पादक लोगोंकी संख्या राष्ट्रमें बढना उचित नहीं है। भारतीय संस्कृतिके इस तत्वको भूलना न चाहिये। इसी दृष्टिसे इस कथाका यहाँ विचार किया गया है। सम्पूर्ण विवेचनसे यह सिद्ध होता है कि प्राचीन आर्योंमें राष्ट्रीय दृष्टि थी तथा उनकी टीका करनेवाले आजके लोगोंमें वही नहीं है।
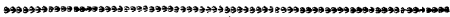
अनुवादक-महेशचन्द्र शास्त्री विद्याभास्कर

वैदिक शिक्षा विधान

(लेखक- पण्डित मदनमोहन विद्यासागर)

(पूर्व लेख वर्ष ३०, अंक १, जनवारी १९४९ में छपा है ।)

अब हम दूसरे प्रश्नपर आते हैं ।

मनुष्यके लिये ही शिक्षणका प्रश्न है । वही कुछ सीखता है । प्रकृतिमें जो साधनसामग्री निहित हैं, मनुष्येतर प्राणी उनको जैसेका वैसा इस्तेमाल करता है । उनमें विकार पैदा नहीं करता । पंचभूत जब अपनी प्रकृतिको छोडकर विकृतिमें आते हैं तो पुनः उसमें कोई और विकार परिवर्तन पशुद्वारा नहीं किया जाता । घास है, गौ उसी रूपमें खालेगी, फल है बन्दर उसी रूपमें पेटमें डाल लेगा, अमरूद हैं तोता वैसे ही कुतरेगा । पर मनुष्य ! इन्हें वैसा भी इस्तेमाल चाहे तो कर सकता है, पर करता नहीं । इसमें शायद उसे अपनी हेठी मालूम पडती है । वह उनसे नाना वस्तुयें तय्यार करता है केले अमरूदकी चाट बनाता है । चावल है, उसको पकाकर उसमें रंगमिलाकर, मेवा डालकर उसकी मिठाई तैयार करता है । पानी है उससे सोटावाटरादि तैयार करता है; गेहूँसे रोटी आदि । जो वस्तु प्रकृतिमें है उसको प्राप्त करके उसमें अपनी अकलसे कुछ तोडफोड करता है, उसमें कुछ जोडता है, कुछ घटाता है; तब अपने मनके लायक बनी समझता है ।

इसलिये उसे प्रकृतिका ज्ञान=प्राकृतिक पदार्थोंका गुण-दोष विमर्शन करना सम्यग्तया आना चाहिये ।

जब वह मातृगर्भसे बाहर आता है तब वह सर्व साधन सम्पन्न होता है । शरीरेन्द्रियां काम करने को तथा अन्तःकरण चतुष्टय सोचने विचारने समझने बूझनेको होता है । यह शरीर षड्भाव विकारोंवाला (निरुक्त, यास्कमुनि) होता है । प्रकृतिमें होनेवाले परिवर्तनोंका शरीर और मन पर प्रभाव पडता है । इन सबका ज्ञान यदि उसे हो जावे तो शरीर मनपर आये आधि-व्याधि रूप परिवर्तनोंसे वह बच सकता है । अर्थात् अपना ज्ञान भी होना आवश्यक है ।

प्रकृतिमें नाना परिवर्तनोंको देखकर मनुष्य आश्चर्यमें पड जाता है । उसमें जिज्ञासाका भावोदय होता है । वह किसने बनाये हैं ? कैसे बने हैं ? वह इन सब रहस्योंको उद्घाटित कर जानना चाहता है ।

यह ज्ञानकी त्रिविध प्रवृत्ति है । इसमें समस्त ज्ञान संगृहीत है । इसीका विशेष विवेचन ' त्रयी विद्यात्मक ' वेद चतुष्टयमें है । प्राकृतिक ज्ञानको ऋग् ज्ञान कहते हैं, ऋ धातुका अर्थ गति परिवर्तित होना है । प्रकृति भिन्न भिन्न रूपोंमें बदलती है । इस प्रकारके ज्ञानका नाम ऋग्ब्रह्म है । मनुष्य कर्मशील है इसलिये वह यजन करता है कुछ करता है । इसलिये याजुष् ज्ञान या यजुर्ब्रह्म-का अर्थ अपने सम्बन्धीज्ञानसे है । अप्रत्यक्ष रहस्यमय वस्तुके विषयमें ' को अद्धा वेद ? ' । इसलिये मनुष्य उसके विषयमें नाना प्रकारसे गुनगुनाता रहता है, गाता रहता है । तरह तरहकी कल्पनायें करता रहता है; इस प्रकारके ज्ञानको ' साम ज्ञान ' या ' साम ब्रह्म ' कहते हैं ।

अब सृष्टि प्रारम्भ हुई तो प्रजापतिने ' ऋग्यजु-साम ' रूप ' सनातन ब्रह्ममय ' (मनुस्मृतिः) को प्रगट किया । इसलिये मनुष्यके लिये इस तीन प्रकारके ज्ञानका संचय आवश्यक है । यही उसका ध्येय है । मानवजीवन का उद्देश्य ' सत्य ज्ञान ' प्राप्ति है; यही पशुसे उसे पृथक् करता है । सम्मुखस्थित पदार्थ तो प्रकृतितः प्राप्त होते हैं, स्वभावतः उनका प्रयोग किया जाता है । बुद्धितः उनसे हानिलाभ बढाया जाता है । यह बुद्धिका विशिष्ट प्रयोग ही सबसे मुख्य ज्ञातव्य है । जब इस त्रयीविद्याका पूर्णतः सत्यज्ञान होता है मनुष्यको परमसुख प्राप्त होता है ।

विद्यासंस्थायें त्रयीविद्याके प्रचारके लिये नहीं हैं । विद्यासंस्थायें तो ऐसी प्रणालिका नियत करती हैं, जिनसे

' त्रयीविद्या ' समझी जा सके। ' ज्ञानत्रयी ' या ' ब्रह्मत्रय ' या ' त्रयीविद्या ' अनुभवका विषय है, केवल पठन का नहीं। पढाई करके तो इस योग्य बन सकता है कि सबे ज्ञानका अनुभव प्राप्त कर सके।

तो फिर पढें क्या ? अर्थात् पाठ्यक्रम स्कूलोंमें क्या हो ? वर्तमानमें विचित्र चपला है। एक पार्टी आती है वह देशको भावीसन्तानमें अपना रंग जमाये रखनेकी नियतसे ऐसा पाठ्यक्रम तय्यार करती है कि बच्चे केवल उस पार्टीके रिकॉर्ड बन जाते हैं और इस प्रकार अपने नेताके वहमोंको पूरा करनेका प्रयत्न करती है। इसीलिये प्रत्येक देशकी शिक्षा प्राणलियां भिन्न भिन्न पाठ्यक्रम भिन्न भिन्न परिणामतः मानवबुद्धिका विकास न होकर पक्षपातपूर्ण सम्प्रदायवादका प्रसार हो रहा है।

परन्तु वेद तो ' मनुर्भव ' ने सिद्धान्तको मानते हैं। इसलिये उनकी दृष्टिमें वे ही विषय पढाये जाने चाहिये जो सबके लिये आवश्यक हों। वेदमें ऐसा निर्देश हमको मिलता है। उसीको समझाता हूँ।

जब शिशु मातृ अङ्कमें आता है तभीसे सीखना प्रारम्भ करता है। वह अनुकरणशील होता है। माताकी चेष्टाओंका अनुसरण करता हैं। सामने होनेवाली हर चेष्टा उसमें फोटोवत उतरती है। ज्ञानेन्द्रियोंके क्रियात्मक प्रयोग का प्रारम्भ पहले मुख करता है। हर चीजको बच्चा मुखमें डालता है। फिर कुछ समयके पश्चात् उसका मुख ॐ ओं करने लगता है। वह बोलनेकी चेष्टा करता है। वह देखता है, सुनता है, बोलता है। ' द्रष्टव्यः ' सबसे पूर्व देखनेकी आदत डालनी चाहिये। इससे ' भाव ' उत्पन्न होते हैं। श्रोतव्यः दूसरेका कहा सुनना चाहिये, 'वक्तव्यः' अपनी समझी सुनी कहनी चाहिये। अब ' भाषा ' का आविर्भाव हो गया। प्रत्येक इन्द्रियका सदुपयोग उचित प्रयोग-शिक्षा शास्त्रका प्रथम सिद्धान्त है। पर इसके लिये विद्यासंस्थाकी आवश्यकता नहीं।

विद्यासंस्थामें सबसे प्रथम ' भाषा ' सिखाये जानेका कार्य है। बोलना समझना वह घरमें कुछ कुछ सीखता है। ज्ञानवृद्धिके लिये ' पढनालिखना ' आवश्यक है। इसलिये बच्चोंके लिये पहला विषय भाषाका पठन पाठन केवल है। अच्छी भाषाका शिक्षण शिक्षणशास्त्रका प्रथम विषय है। अच्छी भाषा उसके सम्बन्धके अन्य विषय व्याकरण अलंकारादि सभी इसके अन्तर्गत हैं। छन्दोबद्ध, पादयुक्त व साममयी (स्वरयुक्त) भाषाका ज्ञान एक विषय हो गया। भाव या ज्ञान तो कुछ न कुछ साथ २ चलता ही रहता है।

उसके बाद उसे उन विषयोंके ज्ञान प्राप्त करनेका प्रयत्न करना चाहिये जिनके विषयमें पर्याप्त तर्क वितर्क करके कुछ निर्णय हो चुका है। हर विषयको नये सिरेसे जान सकना प्रत्येक मनुष्यके लिये साध्य नहीं है। इसलिये वह ' पूर्वेभि सह नूतनैः ' किये हुवे अन्वेषणकी सहायता लेता है। दर्शन, इतिहास आदि विषय इसीके अन्तर्गत हैं।

उसके पश्चात् जिस भूमिपर वह बस रहा है, उसके सम्बन्धकी सब बातें उसे जाननी चाहिये। भौगोलिकज्ञान कृषि सम्बन्धी ज्ञान, ज्योतिष सम्बन्धी ज्ञान, विज्ञानादि सब विषय इसके अन्तर्गत हैं।

अर्थात् सुखेच्छु मनुष्यके लिये भाषा, संस्कृति एवं भूमि इन तीनों विषयक विज्ञानोंको सीखना आवश्यक है। यह प्रत्येक मनुष्यके लिये सामान्य है। चाहे एक मनुष्य इंग्लैण्डमें पैदा हुआ हो और चाहे दक्षिण आफ्रीकामें दोनोंके लिये एक भाषा, कुछ सभ्यता-आचार विचार-आहार विहार सम्बन्धी-नियम वार्तालाप सम्बन्धी ज्ञान तथा भूमिविषयक ज्ञान आवश्यक है। ' भाषा ';' इतिहास'; ' भूगोल ' इन तीन शीर्षकोंके नीचे पाठ्यक्रम समा सकता है। इनको वैदिक शब्दोंमें कह सकते हैं ' इळा; ' ' सरस्वती; ' मही।

कौनसी भाषा ? किसका इतिहास व कौनसी सांस्कृतिक-दार्शनिक विचारधारायें ? कैसे भूगोलका ज्ञान ?

एक मनुष्य भारतवर्षमें रहता है। वह अपनी मातासे जो भाषा सुनता है वही बोलता है। इसलिये स्वभावतः ही उसे ' मातृभाषा ' (राजनैतिक शब्दोंमें कहें तो राजभाषा) सिखायी जानी चाहिये, उसीमें उसको अन्य-विषयोंका भी ज्ञान कराया जाना चाहिये। भाषा और भावोंका (वागर्थ) का समवाय सम्बन्ध है। ' स्वभाव ' स्वसंस्कृतिकी प्रतिपत्तिके लिये ' स्वभाषा ' का ज्ञान है।

लाभदायक है, अनिवार्य हैं । वैज्ञानिक शिक्षणपद्धतिमें पहला नियम यह होना चाहिये कि प्रत्येक देश व जातिको उसकी अपनी भाषामें ही ज्ञान दिया जाना चाहिये। किसी देशके वासियों पर दूसरी जातिके वासियोंकी भाषा लादना अवैज्ञानिक अस्वाभाविक है । इसलिये नियम बना कि प्रत्येक देशके वासियोंके लिये सर्वप्रथम उस देशकी 'भाषा' की पदार्थ ही आवश्यक है । तथा उस देशकी शिक्षका माध्यम तथा 'राजभाषा' भी उस देशकी भाषा ही होनी चाहिये ।

उसके बाद ' सरस्वती ' का नंबर आता है। सरस्वती कहते हैं उस ज्ञानको जो परम्परासे बहता हुआ एकसे दूसरेके पास आता है। जो किसी देश व जातिके अतीतको वर्तमानसे मिलाता है और उसके उज्वल भविष्यका निर्माण करता है। इसमें स्वसंस्कृतिक सामाजिक दार्शनिक सब प्रकारके इतिहासका परिगणन होना चाहिये ।

एक बच्चेके लिये सरलतया सुबोध इतिहास एवं दर्शन-की विचारधारा कौनसी हो सकती है, जिसको वह अपने कुटुम्ब व ग्राममें सुनता है तथा बडों द्वारा माना जाता देखता है। जिसपर उसके आसपासके जन एवं सगे सम्बन्धी चर्चा करते हैं। क्योंकि स्वदेशका इतिहास अपने देशमें विकसित दार्शनिक विचार एवं अपने देशमें प्रचलित नाना-दिक नियम रहन-सहन संस्कारके ढंग वह शीघ्र ही ग्रहण कर सकता है। इसलिये प्रत्येक देशमें उस देशके इतिहास एवं दर्शनका ज्ञान (उस देशकी भाषामें ही) कराया जाना चाहिये। भारतवर्षमें इग्लैंड का इतिहास तथा पाश्चात्यदर्शनोंका अनिवार्य रूपमें पढाया जाना अवैज्ञानिक अस्वाभाविक है। किसी भी प्रकारके ' सारस्वत ' से द्वेष अच्छा नहीं, पर उसके ग्रहण करनेका समय होता है। वह अनिवार्यतः लादा नहीं जाना चाहिये ।

इसके बाद भूमि विषयक ज्ञान है। यह तीन प्रकारका है। पहला इसमें विशाल दृष्टि । हम भूमिको अत्यन्त संकुचित दृष्टिसे देखते हैं, इसको वेदोंमें ' मही ' नाम दिया है जो स्पष्ट ही महत्ताका द्योतक है। इसे पृथिवी भी कहते हैं अर्थात् जो बहुत फैली हुई है। दूसरे प्रकारका इसका भौगोलिक ज्ञान है अर्थात् दिशा या स्थान सम्बन्धी अनुभव । हमें पृथिवीका इस प्रकारका ज्ञान अवश्य होना चाहिये। नदियों पहाडों इसमें होनेवाले परिवर्तनोंका ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। तीसरे प्रकारका ज्ञान ' भूमिसम्पत् ' सम्बन्धी हैं अर्थात् भूमिसे हमें जो जो वस्तुयें प्राप्त होती हैं- वनस्पति आदि खनिज पदार्थ तथा पशुपक्षी कृमिकीटादि सम्बन्धी ज्ञान ।

यह पृथिवी यद्यपि विशाल है तो भी शारीरिक तौर पर मनुष्यकी पहुंच सीमित है; वह जिस भूमिखण्ड तक आसानीसे अपनी पहुंच रखता है, स्वभावतः ही उससे प्रेम हो जाता है। इसलिये प्रत्येक विद्यार्थीको जिसे वह अपनी भूमि (देश) कहता है उसका भौगोलिक तथा खनिज+वनस्पति सम्बन्धी ज्ञान अवश्य दिया जाना चाहिये। उसके ज्ञानसे उसे क्रियात्मिक लाभ है तथा उसे जाननेके लिये उसकी रुचि भी होगी। इसलिये भारतवर्षमें इंग्लैण्डका भूगोल बताया जाना अवैज्ञानिक अस्वाभाविक है।

इस प्रकार हमें यह समझमें आगया कि प्रत्येक मनुष्य-को अनिवार्य तौर पर भाषा, संस्कृति, भूमि इन तीनोंका ज्ञान दिया जाना चाहिये। स्पष्ट राजनैतिक भाषामें कहूँ तो प्रत्येकको उसकी मातृभाषा, मातृसभ्यता तथा मातृ-भूमि अर्थात् स्वभाषा स्वसंस्कृति एवं स्वदेश सम्बन्धी शिक्षण देना शिक्षा प्रणाली की वैज्ञानिकता एवं स्वाभाविकताको बताता है। इसलिये एक देशमें किसी अन्य देश की भाषा संस्कृति व भौगोलिक दशा का पढाया जाना शिक्षाशास्त्र की दृष्टिसे सर्वथा अवैज्ञानिक अस्वाभाविक है।

वेदने निम्न मंत्रों द्वारा इस मौलिक सत्यका प्रदर्शन कराया है।

"इळा सरस्वती मही, तिस्रो देवीर्मयोभुवः।
बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ॥ ऋ० १।१३।९ ॥

(इळा) भाषा (सरस्वती) सभ्यता संस्कृति, तत्व-बोध, दार्शनिक विचारधारा, कुलाचार तथा (मही) महती पृथिवी विशाल भूमिखण्ड ये (तिस्रः देवीः) तीन-देवतायें (मयोभुवः) कल्याण करनेवाली हैं। इसीलिये ये तीनों देवियां (बर्हिः) हृदयमें अन्तःकरणमें (अस्रिधः) न भूलते हुए (सीदन्तु) प्रविष्ट हों। सदा हृदयमें बैठी रहें; इनका ज्ञान रहे।

' इळा ' शब्द भाषा वाणी वाचक है। इळा या इडा ये दोनों शब्द ' इल ' धातुसे बने हैं, जिसके नानार्थ हैं। यहां ' भाषा ' अर्थ विवक्षित है। जो जिनकी जन्मभाषा होती है वही उनकी मातृभाषा कही जाती है।

' सरस्वती ' (विद्या) शब्दका मूल अर्थ (सरस्) प्रवाहसे युक्त है। अनादि प्रवाहसे मानवेतिहासमें गुरुशिष्य-परम्पराके द्वारा जो विद्याकी संस्कृति और सभ्यता आती है उस प्रवाहमयी सभ्यताका नाम सरस्वती है। यह ' पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ' (ऋ० १।३।१०) अनेक प्रकारके सामर्थ्योंसे शक्तिशालिनी पवित्र करनेवाली सरस्वती देवी ' चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् ' (ऋ० १।३।११ उत्तम भावनाओंकी प्रेरक एवं उत्तमबुद्धियोंको चेतना देनेवाली हैं। यह ' सरस्वती प्रचेतयति केतुना। धियो विश्वाविराजति ' (ऋ० १।३।१२) विज्ञानसे युक्त कराती है तथा सब बुद्धियोंको विशेषतः प्रकाशित करती है। ' धीनामविन्यवतु ' (ऋ० ६।६१।४) यह बुद्धियोंकी रक्षा करनेवाली हमारी रक्षा करे।

मही = विशाल पृथिवी। इसको कई अन्य स्थानों पर भारती (अथ० ५।२७।९ तथा यजुः २७।१९) तथा ' विश्वतूर्ति, भारती (ऋ० २।३।८) सबसे विशेष भरण पोषण करनेवाली कहा है। क्योंकि ' अन्न ' की समस्या सबसे मुख्य समस्या होती है।

तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तामिडा सरस्वती मही, भारती गृणाना। अथ० ५।२७।९ ॥

तिस्रो देवीर्बर्हिरेदँ सदन्त्विडा सरस्वती भारती। मही गृणाना। यजुः २७।१९ ॥

" इडा, सरस्वती और (भारती) भरणकर्त्री मही ये तीनों देवियां (गृणाना) हमारा स्वीकार करती हुई इस हृदयासन पर विराजमान हों। "

सरस्वती साधयन्ती धियं न इळा देवी भारती विश्वतूर्तिः। तिस्रो देवीः स्वधया बर्हिरेदमच्छिद्रं पान्तु शरणं निषद्य ॥ ऋ० २।३।८ ॥

" हमारी बुद्धियोंको साधती हुई सरस्वती, दिव्य गुणयुक्त इळा, सबको गति देनेवाली भारती (महीभूमि) ये तीनों देवियां (स्वधया) अपनी धारणाशक्ति के साथ इस हृदयमें आश्रय पाकर निर्दोष हमारी रक्षा करें। "

आ भारती भारतीभिः सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्निः। सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु ॥ ऋ० ७।२।८ ॥

(भारतीभिः, भारती) जो भरितपोषित की जाती है अर्थात् भूमिद्वारा, उसके ऊपरकी जनताके साथ भारती मातृभूमि (सजोषाः) प्रीतिपूर्वक सेवन करे। दिव्य मनुष्योंके साथ इळा मीठी बोली (अग्निः) हरलाइको पैदा करे। सारस्वत जनोंके साथ सरस्वती हमारे पास रहे। तीनों देवियां हमारे अन्तःकरणमें सदा विराजमान रहें।

ये कुछ वेद मंत्र मैंने ऊपर दिये हैं। इनमें स्पष्ट तौर पर यह प्रतिपादित किया गया है कि " मनुष्यको तीन देवियां सुख पहुँचाती हैं, भाषा, सभ्यता और भूमि। ये तीनों सदा उसके पास रहें।

ये तीनों ही मानवताके विकासके सर्वोच्चसाधन हैं। प्रत्येक मनुष्यके मुखमें शहदसनी रसमयी भाषा हो तो कभी झगडा ही पैदा न हो। ' निर्दुरर्मण्य ऊर्जा मधुमती वाक् ' (अथ० १६।२।१) शक्तिशालिनी ' मीठी-बोली ' कभी भी दुष्टभावसे युक्त न हो। ' मधुमतस्थि मधुमतीं वाचमुदेयम् ' (अथ० १६।२।२) मनुष्यो। तुम मीठे स्वभाववाले बनो। मैं मीठे बोली बोलूं।

न केवल मनुष्य मीठा ही बोलेही, प्रत्युत्—

सुश्रुतौ कर्णौ भद्रश्रुतौ कर्णौ, भद्रं श्लोकं श्रूयासम्। अथ० १६।२।४

उसके कान (सुश्रुतौ) अच्छा सुननेवाले (भद्रश्रुतौ) भद्रताकी बातें सुननेवाले हों। मैं सदा कल्याणकारी सूक्तियां ही सुनूं।

वह मीठा बोले, मीठा सुने।

भाषा सब मनुष्योंको एकताके सूत्रमें बांधनेका सर्वप्रधान साधन है। इसलिये शिक्षणमें इसकी शुद्धताका बहुत ख्याल रखना चाहिये। इससे मनुष्यमें दिव्यता =

दिव्यस्वभाव पैदा होता है। सबमें एक प्रकारका उत्साह रहता है। 'इळा देवैर्मनुष्येभिरग्निः'।

मानवताके विकासका दूसरा साधन 'सभ्यता' सरस्वती है। यह अतीत वर्त्तमान और भविष्य की श्रृंखला है। वर्त्तमान मानव जातिका हृदय अतीतमें गुप्त है, और भविष्यकी ओर निहार रहा है। कहीं भर भी भंगता नहीं। एक दूसरेके सुखदुःखमें अनुभूति, उत्तम लोकसंग्रही आचार विचार, विकासकारी आहारविहार, जनक्षेत्रके निमित्त रहन सहन, मनके शोधक दार्शनिक भाव ये सब ऐसी एकसूत्रता मानव जातिमें पैदा करते हैं जो भंग नहीं होती। शिक्षणमें इसकी आवश्यकता है। इस सबका जीवनसे सीधा सम्बन्ध है। 'सरस्वती सारस्वतेभिरवहि।' शिक्षामें यदि इस प्रकारके विषयोंका समावेश हो तो 'सारस्वत जन' पैदा हों। इसका अर्थ है 'बुद्धिमान् जन' मेन ऑफ रिफाइनटेस्ट, कल्चर्ड मनुष्य। एक मनुष्य के 'सुसंस्कृत' होनेका अभिप्राय क्या है, यही कि वह 'आगा पीछा' देखता है 'इधर उधर' की जानता है; जिसने अपने शरीर और मनको अच्छी तरहसे साफ कर रक्खा हो, जिसे 'पूर्व' और 'नूतन' (आने वाले) दोनों प्रकारके ऋषियों द्वारा बताये ज्ञानपर उदारतापूर्वक विचार करनेकी क्षमता हो।

पूर्वजों द्वारा सम्पादित संचित ज्ञानस्रोतमेंसे हमें बहुत कुछ लेना है और आगेके लिये देना है। एक दीप स्वयं जलता है, बुझनेसे पूर्व दूसरेको जला देता है। इस प्रकार ज्ञानकी 'अखण्डज्योती' 'अमरज्योति' दुनियांमें जली रहती है। यदि मनुष्य अपने पितरोंके सब प्रकारके अनुभवोंसे लगा उठाकर उनमें अपने जोडकर आगे आनेवाली सन्ततिको सौंप दे तो सर्वत्र शान्ति आ जावे। यह तभी हो सकता है जब कि सबको उनके पूर्वजोंके कृत्योंका इतिहास तथा उनके पूर्वजोंके चिन्तनका संग्रहरूप दर्शन तथा सदियोंसे आते हुए आचारविचार एवं आहार विहार अच्छे बुरेका ज्ञान दिया जावे। इसीका नाम 'सारस्वत' प्रचार है।

मानवताके विकासका तीसरा साधन है 'भूमिका ज्ञान'। आज हजारों विद्यालय हैं, वहां पढनेवालोंको उस स्थान विशेषका न तो भूगोल पता होता है, न भौगोलिक परिवर्तनोंका, न भूमिके उपयोगका। खेती बारीका ज्ञान नहीं, उत्पन्न पदार्थोंके गुणदोषोंका पता नहीं। परिणामतः इन जीवनके लिये आवश्यक बातोंके लिये इन्हें दूसरों पर आश्रित होना पडता है। 'अन्न वस्त्र निवास' की समस्याका हल 'भूमि' के सम्भार ज्ञान द्वारा तथा भूमिमें उत्पन्न पदार्थोंके सम्भार उत्पादन, वितरण एवं उपयोग द्वारा हो सकता है। प्रत्येक मनुष्यको इस प्रकारके क्रियात्मक ज्ञानके देनेकी आवश्यकता है।

इस प्रकार यदि शिक्षण प्रणालीमें "भाषा सभ्यता तथा भूमि' विषयक क्रियात्मक ज्ञानको प्रचलित कर दिया जावे तो समस्त विश्वमें एकसूत्रता आ सकती है। एक उदाहरण देकर इस बातको अधिक साफ करना चाहता हूँ।

भारतदेशमें 'वैदिकशिक्षाविधान' के अनुसार 'भारतीय भाषा, भारतीयसभ्यता एवं भारत भूमि' सम्बन्धी ज्ञान मुख्य है। इसी प्रकार भिन्न २ देशोंमें किया जाना चाहिये।

परन्तु क्योंकि 'भाषा सभ्यता भूमि' इन्हें देश व जातिविशेषके बन्धनमें बान्धकर संकुचित नहीं किया जा सकता इसलिये कुछ समय बाद 'भाषा' = अन्यभाषायें; सभ्यता = अन्यदेशोंके इतिहास, दर्शनादिका शिक्षण तथा भूमि = विश्वभूगोल पढाये जाने चाहिये।

तीसरी स्टेजमें 'भाषा विज्ञानके सामान्य नियम, व्याकरण, अलंकार शास्त्रादि; मानवसभ्यता एवं मानव जातिका इतिहास तथा समस्त भूमि एवं उसके ऊपर उत्पन्न पदार्थोंका क्रियात्मक ज्ञान कराया जाना चाहिये।

यह सर्वथा स्वाभाविक होनेसे वैज्ञानिक है। सच पूछा जावे और यदि सच ही समझा जावे तो 'भाषा सभ्यता भूमि' को जातीय नामरूपरंगमें रंगना सर्वथा अनुचित है। पर यदि उपरोक्त विशाल दृष्टि बिन्दुमें केन्द्रित करें तो बुरा नहीं। वेद्रे इसीलिये जनरलटर्म्समें यूनिवर्सलो सब सूक्तरत्नोंका वर्णन किया है।

अब प्रश्न यह है कि इसको जारी किया कैसे जावे। वैदिक आदर्शके अनुसार "मातृदेवो भव पितृदेवो भव आचार्यदेवो भव" होना ब्रह्मचारीको शिक्षा है। एक बालक मातासे, भाषा अधिक सभ्यता भूमिका ज्ञान

कम; पितासे भाषा कम, सभ्यताका अधिक, भूमिका कुछ कम ज्ञान प्राप्त करता है। आचार्य ब्रह्मचारीकी पूर्णशुद्धि करता है, तीन अंधेरोंमें पडेको बाहर निकाल देता है वह भाषाका परिमार्जन करता है, पूर्वजोंके इतिहासको बताता है। सोचनेकी शक्ति समृद्ध करता है और अन्नवस्त्रनिवास की समस्याके परिष्कार के निमित्त भूमिविषयक क्रियात्मक ज्ञान देता है।

जीवनमें आचरण करना सिखाता है। सभ्यता एवं भूमि सम्बन्धी ज्ञान अधिक सिखाता है। अर्थात् एक बालक कुछ समय तक मातापिताके पास स्वभाषा, स्वसभ्यता स्वदेश सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त कर उच्चशिक्षाके लिये अर्थात् मानवभाषा, मानवसंस्कृति और ब्रह्माण्डका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये आचार्यके पास जाकर 'वैश्वानर' = विश्वनागरिक बननेकी दीक्षा लेता है।

वह 'समित्पाणि (हाथमें लकडी लिये) जाता है; स्लेटपेन्सिल लिये नहीं। लकडी या तिनका ज्वलित होनेका गुण रखते हैं अर्थात् वह आचार्यके पास 'लकडी' बनकर जाता है ताकि उसके अन्दरकी अग्नि प्रज्वलित की जा सके। और उसके 'जीवन' में परिपक्वता आ जावे। वह 'मेखलया बद्धः' जाता है, कोट पेण्टमें डटकर नहीं। घरमें माताके पास वह स्वतंत्र था, बहुत कुछ अपनी जिदें भी कर सकता था। परन्तु आचार्यके पास जाकर उसने 'नियमित' होकर अध्ययन करता है। इसकी स्वतंत्रताका प्रश्न नहीं। एक दीपककी तरह चुपचाप इसने दूसरे दीपसे ज्योति ले लेनी है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि 'आचार्यके पास' वह जावे। शिक्षा प्रणालीकी पहली बात यह हुई कि वह आचार्यकी आधीनता स्वीकार करे। कैसे? इसका वर्णन पीछे विस्तारसे किया है 'माता' के गर्भमें रहनेकी तरह आचार्यके गर्भमें रहे। वर्तमान भाषामें बोलूं तो 'विद्यालय और आश्रम' दोनों एक ही या एक स्थान पर ही होने चाहिये तथा सबके लिये जरूरी होने चाहिये।

विषय कितने पढाये जावें? तीन 'भाषा सभ्यता तथा भूमि'। इनसे सम्बद्ध ही शेष शास्त्र हैं। ज्यों ज्यों बच्चा बडा हो उसे इन सबका विशेष अध्ययन कराया जावे।

एक साथ कितने विषय पढाये जावें! अपरिपक्व मति बालकोंको एक भाषा, अपने देशका सामान्य इतिहास तथा अन्य सदाचरण सम्बन्धी नागरिक शास्त्र और भूगोल कृषिशास्त्र; वस्त्रका बुनना कुटीर आदि बनाना। ये तीन विषय एक साथ चल सकते हैं। उसके बाद इन्हीं हेडिगों-के नीचे अन्य ऐसे विषय रखे जा सकते हैं जो कि 'मानव जीवन' से सीधे सम्बन्ध है। इतना पढा देनेसे बच्चा पूर्णतः स्वावलम्बी, शरीरसे स्वस्थ एवं मनसे परिशुद्ध बन जावेगा। इसके बाद रुचि एवं योग्यतानुसार बच्चोंको नानाविद्यायें पढाई जावें।

इस ढंगसे यदि शिक्षण हो तो आजीविकाका प्रश्न ही पैदा नहीं होता। वैदिक शिक्षणपद्धति जीवनको कैसे मैन्टेन करना है, यह तो जरूर बताती है पर कैसे रुपया अर्न करना है, इस पर कुछ नहीं कहती। क्योंकि 'अर्न' करना वैदिक दृष्टि है ही नहीं। शिक्षा इस निमित्त दी ही नहीं जाती। आजकल तो शिक्षाका उद्देश्य अर्निंग कैपेसिटी बढाना है। अर्निंग करके लाइफ-मैण्टेन करनेको कहा जाता है। परन्तु वैदिक शिक्षणमें यह बात ही नहीं। 'अन्न वस्त्र निवास' का हक तो प्राणी मात्रको है क्योंकि वे पैदा हुए हैं। क्योंकि तुम पढे नहीं, तुम कमजोर हो तुम्हें खानेपीनेका हक नहीं; यह विचारधारा गलत है। पढना लिखना तो 'शारीरिक-मानसिक आत्मिक' संस्कार-के लिये हैं, 'खानेपीनेकी योग्यता' के लिये नहीं। 'खाना-पीना पहिरना' तो बिना पुस्तक ज्ञान या पढाई लिखाईके भी मजेमें हो सकता है।

वर्तमानमें प्रचलित शिक्षण पद्धतियों तथा 'वैदिक शिक्षणपद्धतिके इस सूक्ष्म भेदको अच्छी प्रकारसे समझना चाहिये।

वैदिक शिक्षण पद्धति स्वावलम्बी एवं स्वस्थ मानवोंको तय्यार करती है। पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली परावलम्बी कुशव्यक्तियोंको बनाती है। क्योंकि इसमें सदाचरण तथा शरीरके उचित विकास पर उचित ध्यान ही नहीं दिया जाता।

वैदिक शिक्षा पद्धति स्वाभाविक तौरपर ही 'मानवता वाद' की प्रचारक है। पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली 'राष्ट्रियता' की समर्थक है।

इन मंत्रोंमें शिक्षाके एक और सिद्धान्तका निरूपण भी किया गया है।

प्रत्येक व्यक्तिको यदि पूर्णतः विकसित कराना हो अर्थात् उसकी सर्वतोमुखी उन्नति करनी हो तो उसके 'मनो-वाक्काय' को शुद्ध करनेका प्रयत्न करना चाहिये। सामान्य भाषामें इस बातको 'मन वचन कर्म' की शुद्धि कहते हैं। उत्तम शिक्षाका अभिप्राय यही होता है कि प्रत्येक मनुष्य मनसि वचसि कर्मणि एकसा रहे। महात्मा और दुरात्माका भेद निम्न श्लोकमें बताया है।

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्।
मनस्यन्यत् वचस्यन्यत्कर्मण्यन्यद्दुरात्मनाम्।

"मन वचन कर्ममें एकरूपता रखनेवाले जन महात्मा कहाते हैं और इनमें भिन्नताको रखनेवाले जन दुरात्मा प्रसिद्ध होते हैं।"

महात्मा शब्दका अर्थ है जिनका आत्मा महान् होगया है, जो विशाल दृष्टि हैं, उदार है सभ्य-संस्कृत हैं। इससे विपरीत दुरात्मा अर्थात् जिनकी आत्माका विकास नहीं हुआ, संकीर्णहृदय, क्षुद्रमन, संकुचित विचारवाले।

शिक्षाका उद्देश्य 'ब्रह्मचारी' बनाना है अर्थात् 'बड़ा बनाना'। सर्वांगीण ब्रह्मत्वका विकास करना। जो आदमी सदा "बड़े विचारोंवाला है, बड़े शरीरवाला है, बड़ोंकी उपासना करता है, बड़े काम करता है, वही ब्रह्मचारी है।"

अभिप्राय यह हुआ कि शिक्षाके द्वारा मनुष्यके अन्दर जो अविकसित शक्तियां हैं उनका विकास कर दिया जाता है और जीवन 'मनवचनकर्म' की एकसूत्रता लादी जाती है। 'सत्य बोलनेके दस लाभ' घुटाकर भी यदि वह सत्य नहीं बोलता तो इस शिक्षणका लाभ क्या? यदि सत्य बोलनेके लाभ वह जानता है, और पूर्णतः सत्याचरण करता है तो यह उत्तम है। परन्तु वर्तमान शिक्षण पद्धतिमें 'झूठा' फर्स्टक्लास फर्स्ट है और 'सच्चा' तभी पास माना जावेगा यदि कुछ ग्रेसमार्क मिल जावें।

'शरीर' के विषयमें सब शास्त्र पढे हैं- विटैमिन पर निकली सब थ्योरियां पढली हैं, पर शरीर दवाइयोंकी बोतल है। क्या लाभ! वैद्यक शास्त्र तो पढे नहीं, पर शरीर लोहेका है, लकड हजम पत्थर हजम। बहुत अच्छा है। शिक्षण ऐसा ही होना चाहिये।

भाषण तो डाक्टर साहब देते हैं कि कमरा रोशनीदार और हवादार खुला होना चाहिये; सोते हैं मुंहढांपे। कहते तो यह हैं कि शरीर पर सूर्यकिरणें पडनी चाहिये ठण्डी ठण्डी हवा लगनी चाहिये, सांस खुली ठण्डी साफ हवामें लेनी चाहिये पर अनावश्यक तौर पर शरीर कपडोंसे लिपटा है। क्या यही शिक्षण शास्त्र है?

मंत्रमें कहा है:- "सुखेच्छु के लिये 'भाषा, सभ्यता एवं भूमि' ही सुख देनेवाले हैं।" जिसने अपनी 'भाषाका परिमार्जन सभ्याचरण व शरीर वशमें कर लिया है' वह सुखी है, सुशिक्षित एवं सुसंस्कृत है। अथवा यदि किसी श्रीकारने अपने नौनिहालोंको सुखीस्वस्थ देखना है तो प्रत्येक मनुष्यकी 'भाषा सभ्यता एवं शरीर' को सुसंस्कृत बना देना चाहिये।

सब परस्पर मधुमयी वाणी बोलें, प्रेमभरा सभ्याचरण करें, स्वस्थ सुदृढ शरीरवाले बनें।

मधुमन्मे निक्रमणं, मधुमन्मे परायणम्।
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसंदृशः॥
॥ अथ० १।३४।३ ॥

"मेरा आना जाना मधुर हो, मैं वाणीसे मीठा बोलूं और शहद तुल्य हो जाऊं।"

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥
अथ० ३।३०।१॥

अनुव्रतः पितुः पुत्रो माता भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्॥
अथ० ३।३०।२॥

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥
अथ० ३।३०।३॥

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट,
संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।

अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत ।
सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि ॥ अथ० ३।३०।५

" आप सबको सहृदय, संमनस्क और (अविद्वेष यथा स्यात् तथा) एकमति करता हूँ । प्रत्येक एक दूसरेके साथ ऐसा प्रेमपूर्ण वर्त्ताव करे जैसे शान्तमूर्ति गौ नवजात-वत्स करती है । "

" पुत्र पिताका अनुव्रती हो, माताके साथ एक मन रहे । पत्नी पतिके साथ शान्तिदायक मीठी बात करे । "

" भाई भाईसे द्वेष न करे और बहिन बहिनसे नहीं। सब मिलजुलकर एकव्रती होकर भद्र वाणी बोलो । "

" बडोंकी संगति करते हुए, उत्तमचित्तवाले होकर, सम्यग्तया कार्यसिद्धिमें तत्पर एक केन्द्र बिन्दुपर रह आगे बढते हुए कभी अलग मत होओ । एक दूसरेके साथ मीठा बोलते हुए आगे बढो । एक उद्देश्यसे कार्य करनेवाले आपको उत्तम एक विचारवाले मनसे युक्त करता हूँ ।"

पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम् ।
शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतम् ।
अदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।
यजु. ३६।२४ ॥

वाङ्म आसन्नसोः प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः ।
अपलिताः केशा अशोणा दन्ता बहु बाह्वो-र्बलम् ॥ अथ० १९।६० ॥

ऊर्वोरोजो जंघयोर्जवः पादयोः ।
प्रतिष्ठा अरिष्टानि मे सर्वात्मानिभृष्टः ॥
अथ० १९। सू० ६१ ॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा. भद्रं पश्येमाक्ष-भिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देव-हितं यदायुः ॥ यजुः २५।२१ ॥

" हम सौ वर्ष पर्यन्त देखें, जीते रहें, सुनें, बोलें । सौ वर्ष तक अदीन (अपराधीन, स्वतंत्र) रहें; सौ वर्षोंसे भी अधिक रहें । "

" (पूर्ण आयुकी समाप्ति तक) मेरे मुखमें वाक्शक्ति, नासिकामें जीवनशक्तिः, आंखोंमें दृष्टि, कानोंमें श्रवणशक्ति रहे । मेरे बाल सफेद न हों, दांत (खून बहनेसे) मलिन न हों । बाहुओंमें बहुत बल रहे । ऊरुओं (पेट और पिण्डलीके ऊपरका भाग जहां ताल ठोकी जाती है) में ओज-स्फूर्ति, जंघों (पिण्डलीभाग) में वेग रहे और पैरोंमें स्थिरता (दृढता टिकनेकी प्रवृत्ति) रहे । मेरे सब (इन्द्रिय) हृष्ट पुष्ट रहें [मारियल पीडित न रहें] । आत्मा सदा उत्साह पूर्ण रहे । "

ऊपर वर्णित मंत्रोंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि मानव योनिमें आकर मनुष्यने क्या करना है ? मीठी भाषा बोलना है, आर्य जनोचित सभ्याचरण करना है, शतवर्ष तक सुदृढ शरीरावयवों वाला रहना है ।

शिक्षणका उद्देश्य इन तीनों भाषा, सभ्यता, शरीरका संतुलित विकास करना ही है ।

मंत्रने दो बातें बताईं । पहली तो यह कि 'भाषा विषयक ज्ञान, सभ्यताविषयक ज्ञान और भूमि विषयक ज्ञान, दान ही विद्यासंस्थाओंके पाठ्यक्रममें होना चाहिये ।

दूसरी, प्रत्येक मनुष्यको भाषा, सभ्यता (चाल चलन, आचारविचार आहारविहारके नियम, शुद्ध विचार) और भूमि (उसके शरीर) का पूरा पूरा ज्ञान दिया जाना चाहिये ।

व्यक्तिगत तौर पर इन तीनोंका पूरा पूरा ज्ञान, सामूहिक तौर पर इन तीनोंका शिक्षण, इससे ही वैश्वानर = विश्वनागरिकोंका निर्माण हो सकता है ।

ब्रह्म–साक्षात्कार

लेखांक ३ । अध्याय ४

न तस्य प्रतिमा अस्ति ॥ वा० य० ३२।३ ॥ (उसका बनानेवाला आदि आदि कोई नहीं)

लेखक— श्री० गणपतराव वा० गोरे, ३७३ मंगलवार 'बी', कोल्हापूर.

(गतांकसे आगे)

खण्ड ३

श्री पं० जयदेवजीके अर्थका स्पष्टीकरण।

'प्रतिमा' का अर्थ मूर्ति नहीं,' यह बात चतुर्वेद भाष्यकार श्री पं० जयदेवजीको भी खटकी थी— देखिए वा० य० ३२।३ के पूर्वार्धका आपका किया हुआ निम्न अर्थ जिसमें 'प्रतिमा' का अर्थ 'मूर्ति' नहीं किया गया है—

"(यस्य) जिसका (महत्) बडा भारी (नाम) नाम, स्वरूप और जगत्को वश करनेका सामर्थ्य है और जिसका (महद् यशः) बडा भारी यश है। अथवा— जिसका (नाम) प्रसिद्ध (महद् यशः) बडा यश है (तस्य) उसकी (प्रतिमा न अस्ति) मापक कोई साधन, परिमाण, प्रतिकृति नहीं है ॥ ३ ॥"

स्पष्टीकरण लेखकका- 'बडा भारी स्वरूप' सूर्यका ही प्रत्यक्ष है, निराकार परमात्माका तो 'अत्यंत हलका स्वरूप' है। 'बडा भारी जगतको वश करनेका सामर्थ्य' भी खगोल-शास्त्री सूर्यमें ही दिखाते हैं, निराकार परमात्मामें नहीं! उनका सिद्धान्त है कि सात, बडे और अनेकों छोटे ग्रह अपने उपग्रहों सहित तथा अनेकों धूमकेतु अपनी करोडों मील लंबी दिव्य पूंछोंके साथ सूर्यके ही गुरुत्वाकर्षण शक्तिसे बंधे हुए सूर्यकी प्रदक्षिणा कर रहे हैं। आंखोंवाले प्रत्यक्ष देखते हैं। और वैज्ञानिक युक्तियोंसे सिद्ध करते हैं कि संसारमें 'बडा भारी यश' भी सूर्यका ही फैला हुआ है, निराकार परमात्माका नहीं! महान् वा 'बडा यश' हो और साथ ही वह बडा यश 'प्रसिद्ध'-प्रत्यक्ष भी हो, इन दो बातोंको जो पूरा कर सकता हो, 'न तस्य प्रतिमा अस्ति' = उसका बनानेवाला कोई नहीं है, ऐसा मंत्र बोल रहा है। आपटेजीके कोशमें यशः के अर्थ हैं–An object of glory or respect = तेजस्वी, प्रभावान्, वा सन्माननीय पदार्थ। A person of distinction=वैशिष्ट्यपूर्ण पुरुष। इन दो अर्थोंके अनुसार भी साकार सूर्य ही वह पदार्थ सिद्ध हो रहा है जिसका बनानेवाला कोई नहीं। परंतु आपटेजीका मत है कि वेदमें यशस् का अर्थ Beauty= सौंदर्य वा Splendour= शोभा होता है। इन अर्थोंके अनुसार भी साकार सूर्य ही वह पदार्थ सिद्ध होता है जिसका बनानेवाला कोई नहीं परंतु जो बना हुआ प्रतीत होता है। सौंदर्य तथा शोभाकी तो सूर्य उपमा ही बना है। पाठक 'उपमा' तथा 'प्रतिमा' में अर्थोंकी समानता देखें, इस प्रकार विचार करनेसे श्री पं० जयदेवजीका अर्थ भी लेखकसे सम्मत हो जाता है!

खण्ड ४-

यश सूर्यका ही नाम है

खण्ड २ में बताया गया था कि श्री पं० जयदेवजी-कृत सामवेदकी भूमिकामें यास्कमुनि अनुसार यशः का अर्थ परमात्मा है। ऊपर युक्तियों द्वारा यशः शब्द 'सूर्य' सिद्ध हो चुका है। निष्कर्ष यह निकला कि जो सूर्य है वही परमात्मा है!

शंका यदि यशः= सूर्य- परमात्मा ऐसा मानना ठीक है, तो वह वेदमंत्र बताओ जिसमें १- सूर्य परमात्माके समान यशः के चलनेका भी वर्णन आया हो और २- वह मंत्र बताओ जो सूर्यके समान यशः को भी सृष्टिका अभिन्ननिमित्तोपादान कारण सिद्ध करता हो।

समाधान--

१. ऋषि ब्रह्मा । देवता अध्यात्मं रोहितः आदित्यः ।

यशा यासि प्रदिशो दिशश्च ॥ अ० १३।१।३८ ॥

अर्थ- (यशा) हे सूर्य वा यशः परमात्मा ! तू (प्रदिशः दिशःच) मुख्य दिशाओं और उपदिशाओंमें (यासि) आता जाता है ॥ ३८ ॥

पाठक ' यशा ' की तुलना वा० य० ४०।१ के 'ईशा' पदसे करें, आर्यसमाजी परमात्माका आना जाना संभव नहीं समझते ! इस विषयमें वेदका समर्थन बाइबल और कुर्आन भी करते हैं ।

२. ऋषि अथर्वा वर्चस्कामः । देवता त्विषिः बृहस्पतिः ।

यशा इन्द्रो यशा अग्निर्यशाः सामो अजायत ।
यशा विश्वस्य भूतस्याहमस्मि यशस्तमः ॥

अ० ६।३९।३ ॥

अर्थ- (इन्द्रः यशाः अजायत) विद्युत् सूर्यसे उत्पन्न हुआ, (अग्निः यशाः अजायत) अग्नि सूर्यसे उत्पन्न हुआ, (सोमः यशाः अजायत) चन्द्रमा सूर्यसे उत्पन्न हुआ । (विश्वस्य भूतस्य यशाः) सब चराचर भूत सूर्यसे उत्पन्न होते हैं; इसलिए कि (अहं) मैं वर्चस्काम सूर्य (यशः तमः) अत्यंत यशवाला= वा० य० ३२।३ का 'महद्यशः' (अस्मि) हूं ॥ ३ ॥

स्पष्टीकरण- इस मंत्रमें विद्युत् अग्नि और चंद्रमा इन तीनों तेजोंकी उत्पत्ति यशा वा सूर्यसे बताते हुए उसे ही जड जंगम सृष्टिका, उत्पादक अर्थात् सृष्टिका अभिन्न-निमित्तोपादान कारण बताया गया है । साथ ही हेतु भी दर्शा दिया कि अथर्वा (अथर्=अग्नि+आ=उत्पन्न) अग्निसे उत्पन्न जो (वर्चस्कामः ऋषि) प्रकाश फैलानेवाला सूर्य है, सो यशस्तमः=अत्यंत यशस्वी है । मंत्रकी देवता त्विषिः = प्रकाश किरण वा सौंदर्य है । अर्थात् सूर्य अपनी ही किरणें, अपना ही सौंदर्य सर्वत्र फैला रहा है । दूसरी देवता बृहस्पतिः भी सूर्य ही है ।

पहले मंत्रका ऋषि ब्रह्मा सूर्य, और देवता= रोहित आदित्य-उगा हुआ सूर्य है । इस प्रकार उक्त दोनों मंत्रोंके ऋषि और देवता अर्थकी दृष्टिसे समान हैं । ये समानताएं सूर्यको सृष्टिका अभिन्ननिमित्तोपादान कारण सिद्ध करती हैं- कारण वक्ता और विषय, द्रष्टा और दृश्य, सृष्टिकर्ता और सृष्टिमें एकता आजाती है ।

यह एक नवीन दृष्टिकोण है और वेदके सिद्धान्तको समझनेमें अत्यंत हितकारी है । इसीके आधारपर साकार सूर्य वेदोंका प्रकाशक भी सिद्ध हो सकेगा ! पाठक इससे अवश्य लाभान्वित हों ।

भारत वेदविरोधी ! पाकिस्तान वेदानुयाई ?

८०० वर्षोंके मुस्लिम राज्य और ३५ वर्षोंके मुस्लिम लीगके सम्पर्कमें रहकर भी हिंदुओंने कुछ न सीखा । स्वराज्य मिलते ही पाकिस्तान भारतके विरुद्ध युद्ध करनेकी सुसज्जता करने लगा, और भारतने १५ कोटिका युद्ध साहित्य पाकिस्तानका फुकट ही भेंट कर दिया, जैसा कि सरदार बलदेवसिंहजीने एकबार बताया था ! वहां युद्धकी धमकियां दी जा रही हैं और हम घोषणाएं कर रहे हैं कि पाकिस्तानपर हम कदापि आक्रमण नहीं करेंगे । वहां लाहोर, रावलपिंडी, कराची आदिमें हवाई हमलोंसे बचावके पाठ पढाए जा रहे हैं, और हमने दो कोटि रुपयोंकी लागतसे सोमनाथके मंदिरका जीर्णोद्धार कर डाला, और ५० लाख रुपयोंकी लागतका स्वर्गीय महात्मा गांधीजीका पुतला मुम्बईके समुद्र किनारे उभारनेका विचार कर रहे हैं !! हिंदुओंके हाथ धन आते ही सर्व प्रथम उन्हें मूर्ति बनानेकी सूझती है ! चाहिए तो यह था कि देहली, मुम्बई, अहमदाबाद आदि स्थानोंको हवाई आक्रमणोंसे सुरक्षित कर देते ऋग्वेद- १।९६ का पाठकरके द्रविणोदा अग्नि= धन, बल देनेवाले अग्निके अस्त्र शस्त्र बनवाते- ऋ. १।१७०।३ के अनुसार धनजित् विश्वजित् सूर्यज्योतिका आवाहन करते- ऋ. १।७४।३ के अनुसार धनञ्जय अग्निको प्राप्त करते । आश्चर्य है कि इन वैदिक देवोंको पाकिस्तान अपनी सहायताके लिए एकत्र कर रहा है ! हमपर जब आक्रमण होगा तो हम झट कह देंगे कि हम तो युद्धके लिए तय्यार ही न थे ! प्रोटेस्ट भी अवश्य ही करेंगे । भारत वेदविरोधी !

प्रारंभिक शब्द— वेदमें दोनों प्रकारके मंत्र आते हैं, एकमें कहा है कि 'परमात्माकी प्रतिमा है।' अन्योंमें उल्लेख है कि 'परमात्माकी प्रतिमा नहीं है।' ऊपरी दृष्टिसे इसे कोई 'वेदमें परस्पर विरोध' कह सकता है, परंतु आर्यसमाज इस बातको नहीं मानता और यह ठीक भी है। अब प्रश्न होगा कि जब वेद 'परमात्माकी प्रतिमा नहीं' ऐसा आदेश देता है, तो उसका क्या अभिप्राय है? जब वेद 'परमात्माकी प्रतिमा है' ऐसा आदेश देता है तो किन अर्थोंमें? साथ ही यह भी यथा संभव देखना है, कि आर्यसमाजके विद्वानोंने इन दोनों प्रकारके मंत्रोंके कैसे अर्थ लगाए हैं, और उनके किए हुए अर्थ उनके इस सिद्धान्तकी पुष्टि भी करते हैं वा नहीं कि 'वेदमें परस्पर विरोध नहीं है।' लेखकने यथामति कुछ मंत्रोंके अर्थ दर्शाए हैं। इन सबकी तुलना आर्यसमाजमें प्रचलित अर्थोंसे की जाय तो लेख बहुत बढ जायगा। अतः यह कार्य वैदिक धर्म के विद्वान पाठक स्वयं ही करें।

खण्ड ५

सूर्यकी प्रतिमा-नहीं है, तो किन अर्थोंमें?

१. उसका प्रतिमा- बनानेवाला आदि आदि कोई नहीं!

ऋषि स्वयम्भू ब्रह्म। देवता परमात्मा, पुरुषः, परब्रह्म वा।

न तस्य प्रतिमा अस्ति० ॥ वा० य० ३२।३ ॥

पूर्ण अर्थ खण्ड २ में पुनः पढिए और 'प्रतिमा' पदके अर्थोंके गाम्भीर्य, विविधता और व्यापकतापर विचार करिए। 'प्रतिमा' का अर्थ 'मूर्ति' करनेसे अर्थमें कितना संकोच आता है, सो देखिए। इन अर्थोंपर विचार करनेसे पता पडेगा कि जब वेद कहता है कि 'परमात्माकी प्रतिमा नहीं' तो उसका अभिप्राय क्या होता है। और देखिए-

(२) उसका प्रतिमा- तुलना उपमा, बराबरी आदि आदि कोई नहीं!

ऋषि— देवता अपरोक्ष।

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः।
हिरण्यगर्भ इत्येषः ॥ शुक्ल यजुर्वेदीय काण्व संहिता ३५।२५ ॥

अर्थ- (न तस्य......महद्यशः) देखो पूर्ण अर्थ खण्ड २ में। (एषः) सदा गतिमान् रहनेवाला (हिरण्यगर्भः इति) सोने-चांदीका सा प्रतीत होनेवाला सृष्टिका केन्द्र अथवा ईश्वर+जीव+प्रकृतिका अण्डा ही वह है [जिसकी तुलना, उपमा, बराबरी आदि इस सृष्टिमें नहीं है] २५।

स्पष्टीकरण- यह काण्व-संहिताका मंत्र वा० य० ३२।३ के पूर्वार्धके खण्ड २ में दिए हुए अर्थोंको ही अधिक स्पष्ट कर रहा है कि किसीको शंका शेष न रहे। जो निराकारवादि मंत्रके पूर्वार्धको अर्थोंको निराकार परमात्मापर घटानेका दुराग्रह करते हैं, उन्हें वेद कहता है कि "जिसका नाम महान् यश है, उसकी तुलना-उपमा--बराबरी करनेवाला आदि आदि कोई नहीं है, यद्यपि वह चमकीला सृष्टि--केन्द्र अथवा ईश्वर--जीव प्रकृति पुञ्ज अथवा जगद्बीज वा ब्रह्मबीज परमात्मा = सूर्य प्रत्यक्ष दीखता और बना हुआ पदार्थ प्रतीत भी होता है।"

कारण क्या? बस यही कि वह स्वयम्भू है-- स्वसामर्थ्यसे बनता और विद्यमान रहता है- Self-born, Self existing है, और देखिए-

३. सूर्यका प्रतिमा-दान देनेवाली, परवाना देनेवाली, अर्पण करानेवाली शक्ति कोई नहीं!

ऋषि वामदेवो गौतमः। देवता इन्द्रः।

नही न्वस्य प्रतिमानमस्त्यन्तर्जातेषूत ये जनित्वाः ॥ ऋ ४।१८।४ ॥

अर्थ- (अस्य नु) निश्चयसे इसकी (जातेषु अन्तः) बने हुए पदार्थोंके भीतर (उत) और (ये जनित्वा) जो बननेवाले हैं उनमें कोई (प्रतिमानं) तुलना, प्रतिमा या उपमा (न अस्ति) नहीं है ॥ ४ ॥

स्पष्टीकरण- यह अर्थ श्री पं० सातवलेकरजीने 'सर्वमेध यज्ञ' में किया है। यहां वेदने तीनों कालोंके लिए एक ही निर्णय दे दिया है कि इन्द्रः वा सूर्यकी प्रतिमा न भूतकालमें थी, न आज उपस्थित है और न भविष्यमें हो सकेगी। 'प्रतिमा' का रूढ अर्थ 'पाषाणादिकी बनाई हुई उपास्य मूर्ति' यदि किया जाय, तो भी

वेद हिंदुओंकी मूर्तिपूजाका बलपूर्वक निषेध करता है और मूर्तिपूजकोंको वेद विरोधी ठहराता है ! परंतु खण्ड १ में बताया गया है कि वेदमें ' प्रतिमा ' का अर्थ ' पाषाणादिकी मूर्ति ' करना उचित नहीं है ।

शंका- यदि ' प्रतिमा ' का अर्थ तुलना, उपमा, वा मूर्ति नहीं तो और क्या है ?

समाधान- आपटेके कोशमें तुलना के अर्थ हैं—

साम्य, उपमा, बराबरी, सादृश्य । ऊपर उठाना । भाव वा कर लगाना । परखना । तोलना । कीमत वा अंदाज लगाना ।

अब प्रतिमा का दूसरा अर्थ होगा- 'साम्य, उपमा, बराबरी, सादृश्य रखनेवाला । ऊपर उठानेवाला । भाव वा कर लगानेवाला । परखनेवाला । तोलनेवाला । कीमत, मूल्य, वा अंदाज लगानेवाला ॥ पाषाणादिकी मूर्तिपर इनमेंसे एक भी अर्थ नहीं घटता ! '

अब आपटेजीके कोशमें उपमा के अर्थ देखिए-

तुलना वा बराबरी करना वा बराबर होना । साम्य दिखाना । मुकाबिल होना वा मुकाबला करना । वेदमें ' उपमा ' का अर्थ To give = दान देना, अथवा To grant = इनाम देना, सनद वा परवाना देना, अर्पण करना ऐसा होता है ।

अब प्रतिमाका दूसरा अर्थ होगा- तुल्य होनेवाला वा बराबरी करनेवाला, मुकाबिल होने वा मुकाबला करनेवाला । दान देनेवाला, इनाम देनेवाला, सनद वा परवाना देनेवाला, अर्पण करनेवाला, इतने अर्थ वेदमें आते हैं । The Standard of Comparison= माप, दण्ड वा उपमान । Likeness= सादृश्य, रूप, चित्र, आकार ॥

उपमा और प्रतिमा के इन अर्थोंमेंसे कोई एक भी पाषाणादिकी मूर्तिपर नहीं घटता । पत्थरके गोलेको भले ही कोई सूर्यकी प्रतिमा=मूर्ति कहकर मनका संतोष कर के परंतु इसमें न सूर्यका सादृश्य, रूप वा आकार है न सूर्यकी असंख्य शक्तियां ! और देखिए-

४. किरणों आदिसे घिरा हुआ सूर्य त्रिलोकीमें अप्रतिम-प्रतिमारहित- Matchless है

ऋषि मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता इन्द्रः ।

न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते । अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥ ऋ. ७।३२।२३, वा० य० २७।३६, अ० २०।१२१।२, साम. ६८१ ॥

अर्थ- (मघवन् इन्द्रः) हे धनवान् सूर्य ! (दिव्यः) द्युलोकका और (पार्थिवः) पृथिवीपरका (त्वावान् अन्यः) तेरे समान कोई दूसरा (न जातः) न आजतक उत्पन्न हुआ है, (न जनिष्यते) न भविष्यमें उत्पन्न होगा । हे ऐश्वर्यवान् सूर्य ! (त्वा) तुझ (अश्वायन्तः) किरणोंसे घिरे हुए (वाजिनः) अन्न और बलके स्वामी (गव्यन्तः) पृथ्व्यादि ग्रहों, ज्ञान तथा कर्मेंद्रियोंमें व्यापक प्रभुकी (हवामहे) हम हवन करके उपासना करते हैं ॥ २३ ॥

स्पष्टीकरण- चारों वेदोंमें आनेके कारण यह मंत्र विशेष महत्व रखता है । यह मंत्र ऋ. ४।१८।४ के ही अर्थको परिपुष्ट कर रहा है । यही नहीं, मंत्र बता रहा है कि ईश्वर, परमात्मा वा ब्रह्मकिरणोंसे घिरे हुए, अन्न और बलके स्वामी सर्वव्यापक सूर्यका नाम है, किसी निराकार पदार्थका नहीं ! साथ ही पूजाकी विधि भी मंत्रने बता दी कि सूर्य परमेश्वरकी उपासना हवन करके की जाती है, धूप, दीप, नैवेद्य दिखाकर और घंटे घडियाल बजाकर कोलाहल मचाकर नहीं !

[अपूर्ण]

' जब (शु-रुधः) शोकको रोकनेकी स्पर्धा-समाजमें चलती है, तब देवोंतक वह घोषणा पहुंचती है । ' समाजमें शोकके सब कारण दूर करनेकी स्पर्धा होनी चाहिये । समाजका प्रत्येक मनुष्य अपने समाजसे सब शोक दुःखके कारण दूर करनेका यत्न करे और इस समाज सेवा करनेमें वे सब स्पर्धा करें । इससे समाज दुःखोंसे दूर हो जायगा और समाजमें सुख बढेगा । तब जनताकी एक ही पुकार, एक ही घोषणा देवोंतक पहुंच जायगी कि दुःखके दूर करनेमें हमें यश मिले । और यह घोषणा देव सुनेंगे और उनको यश देंगे । इस तरह मनुष्योंमें इस विषयकी स्पर्धा होना अच्छा है । मनुष्य यत्न करके सब प्रकारका सुधार कर सकते हैं और व्यक्तिकी तथा समाजकी अर्थात् राष्ट्रकी सुस्थिति बहुत सुधार सकते हैं ।

शिस्नदेव समाजमें न रहें ।

१९६।४ शिश्नदेवा नः ऋतं मा गुः ।

' शिस्नदेव हमारे यज्ञस्थानमें न आवें । ' वे हमारे समाजसे दूर रहें । हमारा समाज ' ऋत ' मार्गसे जानेका यत्न करता है, उसमें शिश्न देवोंसे विघ्न होगा, इसलिये शिश्नदेव हमारे समाजसे दूर हो जांय ? व्यभिचारी, स्त्री विषयक अत्याचार करनेवालोंका नाम शिश्नदेव है । इनसे समाजमें कैसा दुःख फैलता है इसका पता सबको है । इसलिये अपने राष्ट्रमें ऐसे दुष्ट रहने नहीं चाहिये । यह वसिष्ठने देखा हुआ समाजस्वास्थ्यका सिद्धान्त तीनों कालोंमें सत्य है । समाजमें व्यभिचारी दुराचारी लोग नहीं रहने चाहिये ।

अज्ञानीकी निंदा

वसिष्ठ ऋषिके मंत्रोंमें अज्ञानकी निंदा और ज्ञानकी प्रशंसा बहुत है । पीछे बताया गया है कि वसिष्ठ ऋषि ज्ञान विज्ञानमें सबसे अधिक थे, इसलिये अज्ञानकी निंदा करना उनके लिये स्वाभाविक ही है । देखिये—

५३।४ अचेतनस्य पथः मा विदुक्षः

" मूढोंके मार्गसे हम न जांय । " यह इच्छा प्रत्येक मनुष्यको अपने अन्तःकरणमें धारण करनी चाहिये । तथा-

५०९।२ चिकित्वांसः अचेतसं आनिमिषा नयन्ति- ज्ञानी लोग अज्ञानियोंको जागते हुए सुमार्गसे ले जाते हैं । ज्ञानी अज्ञानियोंको सन्मार्गसे प्रमाद न करते हुए चलाते हैं । राष्ट्रमें ज्ञानियोंका यही कर्तव्य है कि वे अज्ञानियोंको सज्ञान करें और जाग्रत रहकर उनको सन्मार्गसे अभ्युदय तक ले जांय ।

६९५ अर्यः देवः अचितः अचेतयत्— श्रेष्ठ ज्ञानी अज्ञानीको ज्ञान देता है और ज्ञान विज्ञान संपन्न बना देता है। राष्ट्रमें ज्ञानीको यही करना चाहिये ।

८१७ अचितः परा शृणीत— अज्ञानियोंको दूर करो, अपने समाजमें कोई अज्ञानी न रहे ऐसा यत्न करना चाहिये । अपने समाजमें सब ज्ञानी बनें । अतः जो अज्ञानी होंगे अथवा अज्ञानी ही रहना पसंद करेंगे, उनको समाजसे बहिष्कृत करना चाहिये । तथा-

५१९।४ वां निण्यानि अचिते न अभूवन्— तुम्हारे गुप्त प्रयत्न अज्ञान बढानेके लिये न होते रहें । तुम्हारे प्रयत्नसे तुम्हारे अज्ञान न बढे ।

इस तरह अज्ञानकी निंदा करके राष्ट्रमें सब लोगोंको ज्ञान-मिले इसलिये किस तरहके प्रयत्न होने चाहियें और इस राष्ट्रो-पयोगी कार्यके लिये ज्ञानी लोगोंने किस तरहके महान प्रयत्न करने चाहिये, इस विषयमें ये निर्देश विचार करने योग्य हैं ।

सुशिक्षा

१९१ यथा पुत्रेभ्यः पिता, (तथा त्वं) नः शिक्ष, अस्मिन् यामनि ज्योतिः अशीमहि— जिस तरह अपने पुत्रोंको पिता सुशिक्षण देता है, वैसा तू हमें ज्ञान दे, हम इसी समय ज्ञान तेज प्राप्त करना चाहते हैं । ऐसा विचार अज्ञानी लोगोंके मनमें चाहिये । वे अज्ञानी ज्ञान लेनेकी इच्छा करें । ज्ञान तेज प्राप्त करनेकी आतुरता उनमें हो और ज्ञानी लोग उनको ज्ञान देनेका यत्न करें । इस तरह दोनों ओरसे प्रयत्न होना चाहिये ।

यदि ज्ञानी अपने ज्ञानी होनेकी घमंडमें रहें और अज्ञानि-योंकी ओर न जांय, अथवा अनाडी लोग ज्ञान लेनेकी इच्छा न करें और अपनी स्थितिमें ही सन्तुष्ट रहें, ज्ञानीके पास जानेका यत्न भी न करें, तो कुछ भी उन्नति नहीं हो सकती । इसलिये इस मंत्रमें कहा है कि अनाडी लोगोंमें " **अस्मिन् यामनि ज्योतिः अशीमहि** " — हम शीघ्रातिशीघ्र ज्ञान तेज प्राप्त करके तेजस्वी विद्वान बनेंगे ऐसी प्रबल इच्छा चाहिये । ऐसे लोगोंकी सहायता विद्वानोंको करनी चाहिये । इस तरह दोनों ओरसे प्रयत्न हुए तो राष्ट्रका राष्ट्र ज्ञान विज्ञान संपन्न होनेमें देरी नहीं लगेगी ।

विद्या देवी

६५३।२ अक्षरा चरन्ती नः परि मा वयत्— अक्षर भयवाणी विद्यादेवी प्रगति करती हुई हमें न छोड देवे ।

३८।१ सरस्वती ... जुनाति— विद्यादेवी हमें उत्तम कर्ममें प्रेरित करती है।

यह विद्याकी प्रशंसा है। विद्याका स्वरूप ' **अक्षरा** ' है, अक्षरोंके रूपमें विद्या रहती है। ' **अक्ष र** ' आंख जिसमें रमते हैं ऐसे सुंदर अक्षरोंमें ज्ञान रहता है। यह प्रगति करने वाला ज्ञान हमें न छोडे और किसी अन्यके पास न पहुंचे। ज्ञानमें हम प्रवीण हों और प्रगति करें। क्योंकि सरस्वती सत्कर्म करनेकी प्रेरणा करती हैं। विद्या न रही, ज्ञान न मिला तो मनुष्य असंस्कृत रहनेके कारण किसी तरह अपनी उन्नति नहीं कर सकता। इसलिये ज्ञानीके पास जाकर मनुष्यको उचित है कि वह विद्याकी उपासना करे।

सरस्वती वह है कि जो किसी जातिके पास हजारों वर्षोंसे ज्ञान परंपरा द्वारा रहती और प्रवाहरूपसे चलती रहती है। इसलिये विद्यासे सरस्वतीका महत्त्व अधिक है। विद्या केवल ज्ञानरूप है, परंतु सरस्वती जीवित प्रवाहरूप है जो सहस्रों वर्षोंसे चलती रहती है, परंतु सूखती नहीं। हजारों वर्षोंका लाखों विद्वानोंका ज्ञानमय जीवन सरस्वतीके प्रवाहमें मिला रहता है। विद्या ही नदी जैसी अखंड ज्ञान विज्ञानके प्रवाहरूप बनी और सहस्रों वर्ष टिकने लगी तो वह सरस्वती बनती है।

ऊपरके दो मंत्रोंमें ' **अक्षरा** ' और ' **सरस्वती** ' ये दो पद हैं। इनका यह भाव मनन करने योग्य है। ' **अक्षरा** ' का अर्थ ' शब्द विद्या, अक्षरोंमें-शब्दोंमें-रहनेवाली विद्या। और ' सरस्वती ' वह है जो ज्ञान नदी सहस्रों वर्ष प्रवाह रूपसे चलती रहती है। राष्ट्रमें अक्षरा विद्या भी बढनी चाहिये और सरस्वतीका प्रवाह भी अखंड चलता रहना चाहिये। दोनोंसे मानवी मनोंपर संस्कार होते हैं, इन संस्कारोंसे मानवी संस्कृति अथवा सभ्यता बनती है। यही संस्कृति मानवी मन पर संस्कार करते करते उसको नारायण भाव तक पहुंचाती है, यही मनुष्यकी अन्तिम अवस्था है कि जहां पहुंचनेके लिये मनुष्य वारंवार जन्म लेता है और अनुभव अपने अन्दर संगृहित करता जाता है।

तीन देवियां

३३।१ भारतीभिः भारती— उपभाषाओंके साथ भारती यह राष्ट्र भाषा है,

३३।१ देवेभिः मनुष्यैः इळा— दिव्य मनुष्योंके साथ मातृभूमि पूज्य है।

३३।१ सारस्वतोभिः सरस्वती— विद्या-सरस्वती-देवीके उपासकोंके साथ विद्या देवी मनुष्योंको आदरणीय होनी चाहिये।

ये तीन देवियां सब मनुष्योंको आदर करने योग्य हैं। मातृभूमि, मातृभाषा और मातृसंस्कृति ये तीन देवियां हैं जो मनुष्यको सुख देती हैं। इनमेंसे एक न रही तो मनुष्य अधूरा बन जाता है। मातृभूमि न रही तो मनुष्यके रहनेके लिये स्थानही नहीं मिलेगा, मातृभाषा न रही तो यह बोलेगा किस तरह और ज्ञान कैसे प्राप्त करेगा? मातृसभ्यता न रही तो मनुष्य पशुवत् ही बन जायगा। इसलिये वेदने कहा है कि ये तीन देवियां मनुष्योंको उपासनीय हैं। मातृभाषा माताकी गोदमें बैठा बैठा बालक सीखता जाता है, मातृभूमि उसको रहनेके लिये स्थान-घर तथा खानेके लिये अन्न देती है। और मातृसभ्यता उसको सभ्य संस्कारसंपन्न तथा माननीय बना देती है। इसलिये ये तीनों आदरणीय हैं।

सुमति

१४८।४ ते सुमतौ शर्मन् स्याम— हम सब तेरी सुमतिमें रहकर सुखी हो जांय।

१४९।४ नः सुमतिं इन्द्रः आगन्तु— हमारी सुमतिसे बने स्तोत्र सुननेके लिये इन्द्र हमारे पास आ जाय।

१८९।२ अघ्नतः वनिष्ठाः वयं सुमतौ स्याम— हम अहिंसक रीतिसे रहनेवाले धनधान्यसंपन्न होकर तेरी सुमतिमें रहेंगे। तेरी प्रसन्नता हमपर रहे।

२११।१ ते मही सुमतिं प्रवेविदाम— तेरा बडा उत्तम आशीर्वाद हमें मिले।

५६३।१ यज्ञियेन मनसा अच्छ विवक्मि— पवित्र मनसे मैं बोलता हूं।

मातृभूमि, मातृभाषा और मातृसभ्यतासे मनुष्यके मनपर जो स्वाभाविक रीतिसे संस्कार होते हैं, उससे उसकी मति सुसंस्कारोंसे संपन्न होती है। जो विशेष सुमतिसंपन्न होते हैं उनको देव कहते हैं, उनसे जो कम होते हैं वे विबुध अथवा संस्कारसंपन्न ज्ञानी कहते हैं। मनुष्य देवों तथा विबुधोंकी सुमति प्राप्त करें, उनकी प्रसन्नता संपादन करें, जिससे मनुष्यकी उन्नति होनेका मार्ग सुगम होगा। देवोंके साथ रहकर देव बन जानेकी संभावना होती है। मनुष्य जब अपने अन्दर सुमति

बढायेगा, तभी तो देव उसको अपने साथ रहने देंगे और उसपर अपनी प्रसन्नता प्रकट करेंगे। सुमति मानवी उन्नतिके लिये सहायक है इसीलिये उसको प्राप्त करना चाहिये।

देवोंके जन्मवृत्तांत जानो

३५।१ देवान् उप अवसृज— दिव्य विबुधोंके समीप जाओ।

३५।२ देवानां जनिमानि वेद— दिव्य विबुधोंके जन्म-वृत्तांत जानो।

३५।३ स सत्यतरः यजाति— ऐसा ज्ञानी सत्यनिष्ठ होता है और उत्तम यजन करता है। सत्यनिष्ठासे देवोंकी प्रीतिके लिये यज्ञ करो।

दिव्य ज्ञानियोंके सत्संगमें रहना चाहिये, उनके जीवनचरित्र जानना चाहिये। जो इन दिव्य चरित्रोंको अपने जीवनमें ढालता है, वह सत्यनिष्ठ होता है, और अपना जीवन यज्ञरूप बनाता है। और अन्तमें देवत्व प्राप्त करता है।

६८९ अस्य जनूंषि महिना धीराः— इस देवके जन्म महत्त्वसे धीरतायुक्त होते हैं। अर्थात् इनके जन्म वृत्तान्तमें महत्त्व रहता है, धैर्य भी रहता है। देवोंके पास जाना, देवोंका इतिहास जानना, उनके जन्म जाननेका अर्थ उनका जीवन-इतिहास जानना है। उनके जन्ममें उन्होंने कैसा कैसा बर्ताव किया, उसका परिणाम क्या हुआ। यह जाननेसे मनुष्यके अन्दर वैसा श्रेष्ठ बननेकी स्फूर्ति उत्पन्न होती है। **'यद्देवा अकुर्वन्, तत् करवाणि'** (शत० ब्रा०) जैसा देवोंने आचरण किया वैसा मैं करूंगा ऐसा यह साधक कहने लगता है और वैसा आचरण करता जाता है। वह प्रथम 'असत्य' होता है, उससे वह 'सत्य' बनता है, और पश्चात् **'सत्य-तरः'** (मं० ३५) बन जाता है। इस तरह देवोंके जन्मवृत्तांत जाननेसे लाभ होता है। **'अनृतं मनुष्याः सत्यं देवाः'** (शत-ब्रा०) मनुष्य असत्य होते हैं और देव सत्यनिष्ठ होते हैं। इस कारण मनुष्य सत्यनिष्ठ बने तो वे ही देव बनते हैं।

देवोंके साथ रहो

१६।२ तुरेभिः देवैः सरथं आयाहि— सत्वर कार्य करनेवाले देवोंके साथ रथमें बैठकर आओ। देवोंके साथ रह।

९८।३ विश्वेभिः देवैः सरथं आ याहि, त्वदृते अमृताः न मादयन्ते— सब विबुधोंके साथ एक रथमें बैठकर आओ, क्योंकि आपके विना विबुधोंकी प्रसन्नता नहीं होती है।

६९० उत स्वया तन्वा सं वदे?— क्या अपने इस शरीरसे वरुणके साथ बोल सकूं?
कदा वरुणे अन्तः भुवानि— वरुणके अन्दरमें कब हो जाऊं?
कदा सुमना मृळीकं अभिख्यं— कब सुख-दायी देवको देखूं?

देवका दर्शन करना, देवोंके साथ रहना। देवोंके रथपर बैठकर आना, देवके साथ बोलना, उनकी सभामें प्रवेश पाना, ये एकसे एक अधिक महत्त्वकी बातें हैं। साधककी जैसी योग्यता बढती है वैसा वह देवोंके साथ रहता, उनसे बोलता, उनकी सभामें प्रवेश पाता और अन्तमें स्वयं देव बनता है। वेदमें मरुत और ऋभु देवोंके विषयमें स्पष्ट कहा है कि वे प्रथम मर्त्य थे पीछेसे देवत्व प्राप्त करनेमें समर्थ हुए। मनुष्यने विद्या प्राप्त करना, संस्कार संपन्न होना, दिव्यगुणोंसे युक्त बनना, देवोंकी स्तुतिका गायन करना यह सब इसीलिये करना हैं कि उसने देवत्व प्राप्त करके स्वयं देव बनना है। इसीलिये यह सब अनुष्ठान है।

देवत्वकी प्राप्ति

९५।१ देवयन्तीः मतयः— देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाली बुद्धियाँ हों।

३९९ देवयन्तः विप्राः— देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले विप्र होते हैं।

'देव इव आचरन्ति इति देवयन्तः' देवके समान जो आचरण करते हैं उनको 'देवयन्तः' कहते हैं। इसीका स्त्रीलिंग नाम 'देवयन्ती' है। बृहस्पति जैसा ज्ञान विज्ञानसंपन्न होना, इन्द्र जैसा शूरवीर और शत्रुका पराभव करनेमें समर्थ होना, मरुतों जैसा शत्रुपर वेगसे आक्रमण करना, सूर्यके समान प्रकाशना और अन्धकार-अज्ञानान्धकार—को दूर करना, अग्निके समान अग्रणी बनकर लोगोंको सन्मार्गसे ले चलना, और अन्तिम सिद्धितक पहुंचाना, वायुके समान शत्रुका विध्वंस करना और लोकोंको सुरक्षित रखकर उनको प्राणदान देना।

देवत्व प्राप्त करनेका यह भाव है। देवोंका जन्मवृत्तांत देखना और स्वयं वैसा आचरण करना। यह देवत्व प्राप्तिका अनुष्ठान है। यह मनुष्यको ऊंचा बना देता है। देव मनुष्यके

अपने आचरणसे सन्मार्ग बताते हैं, मनुष्य वह उपदेश लें और वैसा आचरण करें और उन्नत हो जांय।

सन्मार्ग

३७१ **तृप्ताः देवयानैः पथिभिः यात--** संतुष्ट होकर देवयान मार्गोंसे वापस जाओ।

३७१।३ **रथ्या पथा भजाते--** वीथींके मार्गका सेवन करो; कुमार्गसे न जाओ।

३७४ **पथः अर्वाक् कृणुध्वं--** मार्ग समीपका करो। जो मार्ग समीपसे पहुंचाता है वैसा मार्ग बनाओ।

३९४ **सनवित्तः अध्वा सुगः--** चिरकालसे चलता हुआ मार्ग सुगम होता है।

५१७।२ **नः विश्वा सुपथानि सुगा सन्तु--** हमारे सब सुपथ सुगम हों।

५३६।१ **साधिष्ठेभिः पथिभिः प्र नयन्तु--** उन्नतिके लिये सहायक मार्गोंसे हमें ले जावे।

५५५ **ऋतस्य रथ्यः यत् ओहते, तत् मनामहे--** सत्यके मार्गसे जो मिलता है, उसीका हम विचार करेंगे।

६१७।३ **अंगिरस्तमाः पथ्याः अजीगः--** उषा प्रकाशसे मार्ग बताती है।

६२८।१ **देवयानाः पन्थाः अमर्धन्त--** देवोंके मार्ग हिंसा रहित हैं।

६२८।२ **देवयानाः पन्थाः वसुभिः इष्कृतासः--** देवयान मार्ग धनोंसे युक्त हैं।

देवोंके जाने आनेके मार्ग अच्छे स्वच्छ सुगम और आनंददायक होते हैं। उस मार्गसे जाने आनेवालोंको सुख होता है। जो मार्ग (सनवित्तः) बहुत वर्षोंसे, अनंतकालसे चालू है वह सुगम होता है। इसीलिये वह चालू रहा है। उस मार्गसे जाना सुखकर है। मनुष्य मार्ग ऐसे बनावे कि जो (सुगः अध्वा) जाने आनेके लिये सुगम हो, जाने आनेवालोंको कष्ट न हों। (पन्थाः वसुभिः इष्कृतासः) मार्ग धनोंसे सुखदायी होते हैं। धनका उपयोग करनेसे मार्ग बनते हैं और उनपर सुख साधन उपस्थित किये जा सकते हैं। देवयान मार्ग प्रकाशका मार्ग है और दूसरा पितृयान मार्ग है वह अन्धकारमय है। तीसरा असुरमार्ग है वह गाढ अन्धकारका और घातपातका मार्ग है वह बडा दुःखदायी है इसलिये असुरमार्गसे कोई न जाय। पितृमार्गपर अन्धकार रहता ही है, पर वहां (पितरः-पातारः) संरक्षक रहते हैं इसलिये वह असुरमार्गके समान दुःखदायी नहीं होगा। यद्यपि वह देवयानके समान सुखदायक भी नहीं है। अस्तु यहां तीन मार्ग हैं, उनमें देवयान मार्ग सबसे सुगम है। अतः वैसा मार्ग बनाया जाय और वह समीपका हो। (रथ्यः) रथ जाने आनेके लिये सुखकर मार्ग हो। यहां अपने देशमें और नगरमें मार्ग कैसे हों इसका भी वर्णन है और नरका नारायण बननेवाले मार्गका भी उपदेश है। साधक इसका विचार करें और अपने लिये सन्मार्ग पकडें और सुखसे आगे बढें।

बुद्धि

१०।१ **प्रशस्तां धियं पनयन्त--** प्रशस्त बुद्धि तथा कर्म शक्तिकी प्रशंसा करो।

१३४।१ **नरः पार्याः धियः युनजते--** नेता लोग संकटोंसे पार होनेके लिये बुद्धिपूर्वक प्रयत्न करते हैं।

२६३।१ **प्रचेतसे सुमतिं प्रकृणुध्वं--** बुद्धिमान ज्ञानीके विषयमें सुमति धारण करो, उनकी प्रशंसा करो।

३०७ **शुक्रा मनीषा देवी--** पवित्र बुद्धि दिव्य होती है।

३१४ **धियं दधामि--** धारणवती बुद्धिका धारण करता हूं।

३१५ **देवीं धियं अभि दाधिध्वं, देवत्रा वाचं प्रकृणुध्वं--** दिव्य बुद्धि धारण करो और देवोंका गुण वर्णन वाणीसे करो।

३६०।१ **धीभिः विवेषः--** अपनी बुद्धियों और कर्मोंसे व्याप्त होओ। सब ओर परिणाम करो। सबको प्रभावित करो।

३७१।१ **वस्वः सुमतिं अश्रेत्--** धनके साथ सुमतिको धारण करो।

३८८।२ **ददत् धियं उत् अव--** दान देते हुए बुद्धिका संरक्षण कर।

४०२।१ **समनसः यतिं स्थ--** एक विचारसे यत्नमें रहो, यत्न करो।

५३८।१ **धियः अविष्टं--** बुद्धियोंकी सुरक्षा करो।

५१८।२ **पुरंधीः जिगृतं**— नगरधारक बुद्धि जगाओ। सार्वजनिक हित करनेकी बुद्धि जाग्रत करो। विशाल बुद्धि धारण करो।

५६८।१ **धीषु नः अविष्टं**— बुद्धिके कर्मोंमें हमें सुरक्षित रखो।

६८४।१ **अरक्षसं मनीषां पुनीषे**— राक्षस भावसे रहित बुद्धिको पवित्र करो।

७०४ **शुन्ध्युवं प्रेष्ठां मतिं प्रभरस्व**— शुद्ध करनेवाली श्रेष्ठ बुद्धिको भर दो परिपुष्ट कर दो।

इस तरहके वचन वासिष्ठके मंत्रोंमें आते हैं। इन वचनोंसे स्पष्ट हो जाता है कि शुद्ध बुद्धिका कितना आदर करने योग्य है।

पार्या धीः (२३४)
प्रशस्ता धीः (१०)
शुक्रा मनीषा देवी (३०७)
देवी धीः (३१५)
पुरं धीः (५३८)
अरक्षसी धीः (६८४)
प्रेष्ठा मतिः (७०४)

बुद्धि संकटोंसे पार करनेवाली हो, संकटोंके समय भ्रांत न हो जाय। प्रशंसा करने योग्य बुद्धि हो। बलिष्ठ वीर्यवती मनन करनेमें समर्थ दिव्य सामर्थ्यसे युक्त बुद्धि हो। विशाल बुद्धि हो तथा सर्वजनोंका हित करनेवाली बुद्धि हो। बुद्धिमें राक्षसी और आसुरीभाव न हों। अत्यंत इष्ट मति हो अनिष्ट विचार उसमें न आवें। यह बुद्धिका वर्णन देखनेसे स्पष्ट हो जाता है कि इन मंत्रोंमें बुद्धिकी शक्तिके विषयमें कितना सूक्ष्म विचार भरा है।

सज्जनोंके साथ रहनेसे, उत्तम, गुरुके पास रहनेसे, सुविद्याके संस्कार होनेसे, स्वयं पवित्रता और शुद्धता धारण करनेसे बुद्धि अच्छी सूक्ष्म होती है। इस समयतक क्रमसे जो प्रकरण आये हैं और उनमें जो मार्ग दर्शन हुआ है, उस प्रकार करनेसे उत्तम विशाल प्रभावी बुद्धि प्राप्त हो सकती है।

बुद्धिमें सद्भावना चाहिये, दिव्यता चाहिये, शुद्धता चाहिये, कार्यक्षमता चाहिये, अत्यंत कठिन प्रसंगमें भी उसमें कंप उत्पन्न होना नहीं चाहिये। जितना भयानक अवसर प्राप्त हो, उतनी क्षमता बुद्धिमें चाहिये, क्योंकि अपना संरक्षण (स्वस्तिभिः पातं) प्रशस्त संरक्षणके साधनोंसे होना चाहिये। ऐसी बुद्धि होनी चाहिये कि जिससे यह सब सहजहीसे हो सके।

ज्ञान

१०८ **तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि**— तुम्हारे लिये ये ज्ञानके सूक्त मैं शक्ति वर्धनके लिये करता हूं।

२४३।१ **ब्रह्मकृतिं अविष्ठः**— ज्ञानपूर्वक की हुई कृतिका संरक्षण कर।

२४५ **हे ब्रह्मन् वीर! ब्रह्मकृतिं जुषाणः**— हे ज्ञानी वीर! ज्ञान पूर्वक कृतिका तू सेवन कर।

२४७ **येषां पूर्वेषां ऋषीणां अशृणोः, ते पुरुष्या आसन्**— जिन पूर्व ऋषियोंका स्तोत्र तुमने सुन लिया था, वे ऋषि मानवोंका हित करनेवाले थे।

३४७ **ऋतस्य सदनात् ब्रह्म प्र एतु**— सत्यके केन्द्रसे ज्ञान फैले।

इन मंत्रोंमें (ब्रह्माणि वर्धनानि) ज्ञानके सूक्त शक्तिका संवर्धन करनेवाले होते हैं, इसलिये (ब्रह्म-कृतिं अविष्ठः) ज्ञानकी कृतिका संरक्षण करो। क्योंकि (ऋषयः पुरुष्याः) जो ऋषि हैं वे सब मानवोंका हित करनेवाले होते हैं, इसलिये (ब्रह्मकृतिं जुषाणः) उनकी जो ज्ञानकी कृति स्तोत्र रूप होती है, उसका आदर करना योग्य है। इसका कारण यह है कि, इस ज्ञानसे ही सब मानवोंका हित होनेवाला है। यह ज्ञान (ऋतस्य सदनात्) सत्य यज्ञके स्थानसे फैलता है, विश्वमें चारों ओर जाता है और वहां इस ज्ञानसे सबका कल्याण होता है। इसलिये यह ज्ञान सबको आदरके योग्य है। ऐसा यह ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य स्वयं ज्ञानी बने। जो ज्ञानी होगा वही वंदनीय होता है।

ज्ञानीका आदर

२४।१ **महः सुवितस्य विद्वान्**— बडे कल्याणका मार्ग जो जानता है वह ज्ञानी है।

२४।२ **सूरिभ्यः बृहन्तं रयिं आवह**— ज्ञानियोंको धन दो।

५० **अमृतः सहस्वः कविः प्रचेताः अकविषु मर्तेषु निधायि**— अमर बलवान् ज्ञानी बुद्धिमान् पुरुष

अज्ञानी (निर्बुद्ध तथा निर्बल) मानवोंमें अपना ज्ञान रखता है।

८७।१ जारः मन्द्रः पावकः कवितमः उषसां उपस्थात् अबोधि— वृद्ध आनन्द देनेवाला पवित्र करनेवाला ज्ञानी उषः कालके समय जागता है। ज्ञानी प्रातः कालमें उठकर अपने कामपर लगता है।

८७।१ उभयस्य जन्तोः केतुं दधाति— दोनों प्रकारके मनुष्योंको ज्ञान देता है। सबको ज्ञान मिलना चाहिये।

८७।१ देवेषु हव्या सुक्रतुषु द्रविणं— यज्ञमें देवोंके लिये हविष्यान्न और अच्छा कर्म करनेवाले ज्ञानियोंको धन देना चाहिये।

८८।१ मन्द्रः दमूनाः विशां राम्याणां तमः तिरः ददृशे— आनंदित तथा मनका संयम करनेवाला ज्ञानी वीर प्रजाजनोंके लिये रात्रीयोंका अन्धेरा दूर करता है। सबके लिये प्रकाश करता है। ज्ञानी अज्ञान दूर करके अपने ज्ञानसे सबको मार्ग दर्शन करता है। सूर्य वा अग्नि जैसा अन्धेरा दूर करता है वैसा ज्ञानी अज्ञान दूर करें।

८९ अमूरः कविः अदितिः विवस्वान् सुसंसत् मित्रः अतिथिः चित्रभानुः शिवः उषसां अग्रे भाति- ज्ञानी दूरदर्शी अदीन-उत्साही, तेजस्वी, उत्तम साथी मित्र पूज्य प्रभावी हमारे लिये कल्याणकारी ऐसा ज्ञानी उषःकालके पहिले ही जागता है।

९० मनुषः युगेषु ईळेन्यः जातवेदाः, समनगाः अशुचत्, सः सुसंदृशा भानुना विभाति— मनुष्योंके संगठनमें प्रशंसनीय कार्य करनेवाला ज्ञानी, युद्धोंके समय सामना करनेवाला प्रकाशित होता है, वह अपने दर्शनीय सुन्दर तेजसे चमकता है।

९४ उशिजः यज्ञं मन्म च तन्वानाः, वनिष्ठः विद्वान् देवयाता चित् आ द्रवत्— सुखकी इच्छा करने वाला विद्वान् प्रशस्त कर्म और सुविचारोंका प्रचार करता है, वहीं दानशील विद्वान् देवत्व प्राप्तिकी इच्छासे विशेष प्रगति करता है। विशेष प्रयत्न करता है।

१०४।२ जातवेदाः दमे आस्तवे— ज्ञानीकी अपने स्थानमें प्रशंसा हो।

१०८।४ ब्रह्मणे गातुं विदं— ज्ञानप्रसारके लिये उत्तम मार्ग प्राप्त करो।

१३३।१ सूरयः ते प्रियासः सन्तु— ज्ञानी तेरे लिये प्रिय हों।

१६६।३ सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छात्— ज्ञानियोंके लिये उत्तम दिन दों। ज्ञानियोंके लिये सभी दिन उत्तम दिन प्रकाशित होते हैं।

१७७।४ सूरिषु प्रियासः स्याम— विद्वानोंमें हम अधिक प्रिय हों। हम अधिक ज्ञानी हों और हम विद्वानोंमें प्रिय हों।

३६१।१ वेधसः वासयासि— ज्ञानियोंका सुखसे निवास करनेवाला राजा हो। शासक अपने राज्यमें ज्ञानियोंका उत्तम योगक्षेम चले ऐसा प्रबंध करे।

४०८ विश्वे महिषाः अमूराः शृण्वन्तु— सब बलवान् ज्ञानी सबका सुनें। ज्ञानी शक्तिशाली हों और वे सबका सुनें और उनको योग्य उपदेश दें।

५१६।१ ऋतावा दीर्घश्रुत् विप्रः— सत्यनिष्ठ बहुश्रुत् ज्ञानी होता है।

५१६।१ सुकृत् ब्रह्माणि अवाथः— तुम उत्तम कर्ममें कुशल होकर अपने ज्ञानोंको सुरक्षित रखो। ज्ञानका नाश होने न दो।

५५१ सूरिभिः सह स्याम— विद्वानोंके साथ हम रहें।

५७२ सूरीन् जरतं— ज्ञानियोंकी प्रशंसा करो।

६३० ऋतावानः पूर्व्यासः कवयः पितरः सत्यमन्त्राः ते देवानां सधमादः आसन्— सत्यका पालन करनेवाले पूर्व समयके ज्ञानी संरक्षक वीर सत्यमंत्र और देवोंके साथ रहकर आनंद करनेवाले थे। सत्यमंत्र वे हैं कि जिनके विचार सच्चे होते हैं।

६८१।१ सूरिषु ब्रह्माणि प्रशस्ता कृतं— ज्ञानियोंमें प्रशंसित स्तोत्र करो। ज्ञानियोंका गुण वर्णन करो।

७००।३ विद्वान् विप्रः मेधिराय उपराय युवाय शिक्षन् उवाच— ज्ञानी गुरु अपने पास रहनेवाले बुद्धिमान् शिष्यको उपदेश देता है। विद्या सिखाता है।

७००।८ पदा गुह्या अवोचत्— पदोंसे गुह्यज्ञान देता है।

इन वेद वचनोंमें ज्ञानीका वर्णन है। ये वचन मनन पूर्वक देखने योग्य हैं। (सूरिभ्यः बृहन्तं रयिं आवह) ज्ञानियोंको

धन दो, पर्याप्त दक्षिणा दो। यह आदेश है। ज्ञानी लोग भिखारी मांगेंगे नहीं, चुप बैठेंगे; इसलिये उनको भूखा रहना पडेगा। इसलिये यह सूचना दी है कि उनकी आजीविकाका प्रबंध करो। ज्ञानियोंके घरमें विद्यार्थी पढनेके लिये आते हैं, अतः ज्ञानियोंका सब समय पढाईमें जाता है, वे धन किस तरह कमा सकते हैं? इस कारण उनको घर बैठे ही धन मिलना चाहिये। ये ज्ञानी (महः सुवितस्य विद्वान्) बडी सुविधाका प्रबंध करनेका ज्ञान रखते हैं। ज्ञानी निश्चिंत हुए तो वे उपदेश द्वारा सबके कल्याणका मार्ग सबको बता सकते हैं। इसलिये उनको धन मिलना चाहिये अर्थात् आजीविकाकी तंगी उनको न सतावे, इतना प्रबंध होना चाहिये।

(अमृतः सहस्वः प्रचेताः कविः अकविषु मर्तेषु निधायि) अमरबलसे युक्त विशेष बुद्धिमान् ज्ञानी अज्ञानी मानवोंमें अपना ज्ञान रखता है और उनको सज्ञान करता है। समाजमें वा राष्ट्रमें ज्ञानीका यह कार्य है। अज्ञानीयोंको ज्ञानी बनाना। यह कार्य महत्त्वपूर्ण कार्य है, इसलिये ज्ञानीको धन देना चाहिये और उसका आदर करना चाहिये।

(कवितमः पावकः) अत्यंत ज्ञानी जो होता है वह पवित्र करनेवाला होता है। बाह्य आभ्यंतर शुद्धता वह करता है। अपवित्र भाव कहीं भी रहने नहीं देता। पवित्र करके उन्नतिको पहुंचा देता है। (केतुं दधाति) अज्ञानियोंको वह ज्ञान देता है। ज्ञान ही पवित्रता करनेका उत्तम साधन है। (मन्द्रः विशां तमः तिरः ददृशे) यह सदा प्रसन्न रहनेवाला ज्ञानी प्रजा जनोंके अज्ञानको दूर कर देता है। सदुपदेश द्वारा वह सबको ज्ञान देता है।

ज्ञानी कैसा होता है देखिये (अमूरः कविः) वह मूढता रहित होता है, कवि अर्थात् क्रांतदर्शी, दूरदर्शी होता है, (अदितिः=अदीनः) दीनता उसके पास नहीं होती तथा (अदितिः=अदनात्) अन्न उत्पन्न करनेकी आयोजना यशस्वी करता है। (विवस्वान्) सूर्यके समान तेजस्वी होता है, (सुसंसत् मित्रः) उसकी संगतिमें रहने योग्य है, वह उत्तम साथी होता है, हित करनेवाला मित्र होता है, (अतिथिः= अतति) जो उपदेश करता हुआ सतत भ्रमण करता है, भ्रमण करके जनताको सदुपदेश देता है, (शिवः) कल्याण करनेवाले उपदेश देता है कल्याण करनेका मार्ग बताता है। ये पद ज्ञानी कैसा होता है, क्या करता है और उसको क्या करना चाहिये इस विषयका वर्णन करते हैं। इसका मनन करनेसे ज्ञानीके सामाजिक कर्तव्योंका बोध प्राप्त हो सकता है।

(ब्रह्मणे गातुं विंद) ज्ञानके प्रसारका मार्ग वह जानता है और वैसा ज्ञानका प्रसार वह करता है। (सूरिभ्यः सुदिना) ज्ञानियोंके लिये उत्तम दिन प्रकाशित होते हैं क्योंकि उनके ज्ञानसे दुरवस्था दूर होती है और उन्नतिका मार्ग उनके लिये सुगम होता है। इसलिये (सूरयः प्रियासः) ज्ञानी प्रिय होते हैं। सबको उचित है कि वे ज्ञानियोंके साथ प्रेमका व्यवहार करें और उनको प्रसन्न रखें।

(ऋतावा दीर्घश्रुत् विप्रः) सन्मार्गसे जानेवाला जो बहुश्रुत होता है उसको विप्र कहते हैं। (सत्य-मन्त्राः) इनके विचार सत्य होते हैं, असत् विचार वे अपने पास नहीं रखते। ऐसे ज्ञानी (गुह्या पदा प्रवोचत्) गुह्य विद्याका उपदेश करता है, सबको गुप्तज्ञान देता है और विद्वान् बना देता है। (विद्वान् विप्रः मेधिराय युगाय शिक्षन्) उक्त प्रकारका विद्वान् ज्ञानी बुद्धिमान शिष्यको उपदेश देकर ज्ञान देता है। धारणा शक्ति वाला शिष्य हुआ तो ही वह उत्तम गुरुसे उत्तम विद्या प्राप्त करता है। जो बुद्धिहीन होता है वह गुरुके प्रयत्न करनेपर भी ज्ञानमें विशेष प्रगति नहीं कर सकता।

इस तरह ज्ञानीके कर्तव्योंका वर्णन वसिष्ठके सूक्तोंमें हमें मिलता है। ज्ञानी बननेसे ही सब प्रकारका हित होनेकी संभावना है। यह अनुभव इन वचनोंमें टपकता है। ज्ञानके विना मनुष्यका अभ्युदय या निश्रेयस कुछ भी बनना नहीं है। इसलिये यावत् शक्य मनुष्यको ज्ञानीके पास रहकर ज्ञान विज्ञान प्राप्त करना चाहिये। यह इन वचनोंका तात्पर्य है।

ज्ञानके साथ भक्ति

५२।५ **वयं अदुघः मा—** हम भक्तिहीन न हों।

ज्ञानका महात्म्य इससे पूर्व वर्णन किया है। अब इस वचनमें कहते हैं कि हम भक्तिहीन न हों। ज्ञान और भक्तिका सामंजस्य होना चाहिये। इसका कारण यह है कि ज्ञान भक्तिके साथ न रहा तो नास्तिकता बढ आती है और भक्ति ज्ञानके साथ न रही तो वह अन्धविश्वास बढाती है। इसलिये अविश्वास भी न बढे और अन्धविश्वास भी न बढे, ऐसा मध्यम मार्ग प्राप्त करनेके लिये ज्ञानसे आंखें भी खोल दी हैं और भक्तिसे हृदयकी सहृदयता भी सिद्ध की है। इस तरह यहां ज्ञान और भक्तिका समन्वय बताया है।

समाजमें ज्ञानहीन भक्ति न बढे, ज्ञानहीन भक्ति बढनेसे लोग भोले बनेंगे, जिनको कोई आकर लूट सकेगा। इसी तरह भक्तिहीन ज्ञान भी बुरा है जो नास्तिकता और भोगी जीवन बढाता है, इससे अश्रद्ध क्रूर राक्षस पैदा होते हैं इसलिये राष्ट्रमें ज्ञान सार्वत्रिक होना चाहिये और साथ साथ भक्ति भी चाहिये। प्रारंभसे ही ऐसा शिक्षा प्रबंध रहना चाहिये।

घुटने टेककर प्रार्थना

६६२ मितज्ञवः क्षेमस्य प्रसवे युवां हवन्ते— घुटने जोडकर कल्याणके लिये तुम्हारी स्तुति करते हैं।

७५८ सरस्वती मितज्ञुभिः नमस्यै इयाना सुभगा राया युजा— घुटने टेककर प्रार्थना करनेवालोंसे सरस्वती भाग्यवान बनी है।

यहां '**मितज्ञु, मितज्ञवः**' पद हैं। घुटने जोडकर बैठना या घुटने टेककर बैठना और प्रर्थना करना ऐसा इसका भाव है। घुटने जोडकर वीरासन होता है और घुटने टेककर भी एक प्रकारका प्रार्थनासन बनता है। मध्यकालीन पद्धतिके अनुसार पुण्याहवाचन नामक कर्ममें एक ऐसा कर्म किया जाता है कि जिसमें यजमान घुटने टेककर ही बैठता है और वह कर्म करता है। '**अवनिकृत जानुः**' ऐसे पद उक्त कर्मके समय बोलते हैं इसका अर्थ घुटनोंसे भूमिको स्पर्श करके बैठना चाहिये। यही वीरासन या प्रार्थनासन होता है। इस समय ईसाई अथवा मुसल्मान ऐसे बैठकर प्रार्थना करते हैं। पर ऐसे घुटने टेककर बहुत देरतक बैठा नहीं जाता। दस पंद्रह निमेष या ऐसा ही बैठना संभव है। अधिक बैठनेके लिये दूसरे ही स्वस्तिकासन, सुखासन, पद्मासन आदि आसन उपयोगी है।

जय विजय

१७४।३ तरणिः इज्जयति— जो स्वयं तैर जाता है, त्वरासे कर्म करता है, वह विजय प्राप्त करता है।

१७४।४ तरणिः इत् क्षेति— जो स्वयं तैरकर दुःखोंसे पार जाता है वह अपने घरमें आनंदसे रहता है। और **पुष्यति** पुष्ट होता है. बलिष्ट भी होता है

१७४।६ कवत्नवे देवासः न— कुत्सित कर्म करनेवालेके लिये देव सहायता नहीं करते। अच्छा कर्म करनेसे देव-सहायक होते हैं जिससे विजय मिलता है।

१७७ जिग्युषः धनं— विजयी वीरका ही धन होता है।

यहां विजय किसका होता है उसका वर्णन 'तरणि' शब्दसे किया है। 'तरणि' नाम सूर्यका है, वह अन्धकारसे लडता है और उसका पराभव करके स्वयं विजयी होता है। तरणि उत्तम तैरनेवालेका नाम है। आकाश रूपी महासागरमें उत्तम रीतिसे तैरता है इसलिये सूर्य विजयी होता है। जो ऐसा दुःखों, संकटों और शत्रुओंसे पार होगा, इनको परास्त करेगा वही विजयी होगा और वही (क्षेति) यहां आनंदसे रह सकेगा। त्वरासे अपना कर्तव्य करना और शत्रुओंसे पार होना बीचमें डूबना नहीं, इतनी बातें हैं जिनसे विजय होता है। मनुष्यको विजय चाहिये और विजयसे भी मनुष्यको धन चाहिये। यह धन (जिग्युषः धनं) विजयी वीरको ही मिलता है। इसलिये धन चाहनेवाले मनुष्य वीर बने तथा दुःखोंसे पार होनेका पुरुषार्थ करें।

शरीरका संवर्धन

८४।१ हे सुजात ! स्वयं तन्वं वर्धस्व— हे कुलीन ! तू स्वयं अपने शरीरका संवर्धन कर। अपने शरीरको हृष्ट पुष्ट तथा बलवान् बनाओ।

११७ ऊर्जः न-पात्— बलको कम न करनेवाला बन। इस जगत्में जय, यश या धन जो भी कमाना होगा, वह शरीर स्वस्थ तथा बलवान् होनेसे ही होगा। सब यशोंके लिये शरीरकी आवश्यकता है। विना शरीर स्वस्थ रहे कुछ भी नहीं हो सकता। शरीरमें ऊर्जे, ओज, और बल रहना चाहिये। यह (स्वयं तन्वं वर्धस्व) स्वयं यत्न करो, स्वयं प्रयत्न करो तब हो सकता है। तुम्हारे लिये दूसरा कोई व्यायाम करे और अच्छा अन्न खावे, तो तुम्हारा शरीर हृष्टपुष्ट नहीं हो सकता, उसके प्रयत्नसे उनका शरीर स्वस्थ रहेगा। इसलिये मंत्रमें कहा है (स्वयं) स्वयं प्रयत्न करके शरीरको बढाओ। यह स्वकीय प्रयत्नसे सिद्ध होनेवाली बात है। विचार, उच्चार, आचार अच्छे रहनेसे शरीर अच्छा रहता है और शरीर बलवान् रहनेसे यश प्राप्त हो सकता है।

तेजस्विता

९३ वृषा शुचिः धियः हिन्वति, भासा आभाति, पृथु पाजः अश्रेत्— बलवान् पवित्र वीर अपनी बुद्धियों द्वारा शुभ कर्मोंको करता है, अपने तेजसे प्रकाशता है, और बहुत अन्न या सामर्थ्य प्राप्त करता है।

९४।१ वस्तोः स्वः न अरोचि— दिनके समय जैसा सूर्य प्रकाशता है वैसा प्रकाशित हो जाओ ।

१०७।१ त्वं शोचिषा शोशुचानः रोदसी आपृणः- तू तेजस्वी होकर अपने तेजसे विश्वको परिपूर्ण कर दो ।

२९१।२ अस्मिन् यामनि जीवाः ज्योतिः अशीमहि— इसी समयमें हम सब जीव, मनुष्य तेजस्विता प्राप्त करना चाहते हैं ।

५११।१ सूर्यः बृहत् पुरु अर्चीषि अश्रेत्— सूर्य बहुत बडे तेजोंको प्राप्त करता है, वैसा तुम तेजस्वी बनो ।

५११।२ सूर्यः मानुषाणां विश्वा जनिमा ददर्श— सूर्य मनुष्योंके सब जन्म देखता है ।

५११।३ दिवा रोचमानः समः ददृशे— दिनके समय प्रकाशता है और सबको समान दीखता है ।

बल, शुचिता और बुद्धि होनेसे तेजस्विता मनुष्यमें रहती है । (वृषा शुचिः धियः भाः) ये चार शब्द मननीय हैं । बल, पवित्रता, बुद्धि और तेजस्विता मनुष्यको अपने अन्दर धारण करनी चाहियें । शारीरिक बल, अन्तर्बाह्य पवित्रता, बुद्धियां, और तेजस्विता मनुष्यको अपने अन्दर बढानी चाहिये । इसके लिये (पृथु पाजः) बहुत पर्याप्त अन्न चाहिये, यह अन्न शुद्ध और पवित्र चाहिये ।

सब मनुष्य चाहते हैं कि (जीवाः ज्योतिः अशीमहि) हम तेजस्विता प्राप्त करें । कोई ऐसा नहीं चाहता है कि मैं निस्तेज निर्वीर्य बनूं । परंतु " अन्न बल, शुचिता, बुद्धि, और पश्चात् तेजस्विता " यह क्रम है । योग्य अन्न ! न मिला तो शरीरमें बल नहीं बढेगा, शुचिता न रही तो वह बल प्राप्त होनेपर भी टिकेगा नहीं, बुद्धि न रही तो बल प्राप्त होनेपर भी उससे अपनी उन्नति नहीं हो सकती । इस तरह ' अन्न, बल, पवित्रता, बुद्धि ' इनका योग्य साहचर्य मिला तो ही तेजस्विता प्राप्त होती है । यहां बुद्धिमें ज्ञान तथा विद्याका समावेश हुआ है ।

(मानुषाणां विश्वा जनिमा ददर्श) मनुष्योंके सब जन्मवृत्त देखो । इस इतिहासके मननसे पता लग जायगा कि किन दिव्य विभूतियोंने तेजस्विता प्राप्त की थी, वैसा बननेका यत्न करो । और जिन्होंने वैसा आचरण नहीं किया इस कारण जो अवनतिको प्राप्त हुए उनके मार्गसे न जाओ । तेजस्विता इस तरह प्राप्त होती है । तेजस्वी पुरुष ही श्रेष्ठ होते हैं ।

भोजनके लिये अन्न

१३० विश्वा मर्तभोजना रास्व— मनुष्योंके लिये जो योग्य भोजन है वह दे दो । मनुष्योंके उपभोगके योग्य अन्न हमें प्राप्त हो ।

१७६।१ दाशुषे सना भोजनानि— दाताको शाश्वत टिकनेवाले भोजन दो ।

३८२।२ अनर्वा अदितिः सुहवा— प्रतिबंधरहित अन्न देनेवाली जो होगी वही प्रशंसायोग्य है ।

५६७ वां चित्रं भोजनं अस्ति, अत्रये महिष्मंतं नियुयोतं— तुम्हारा वह विलक्षण अन्न है, जो अत्रिकी शक्ति बढानेके लिये तुमने दिया था ।

५७८ जरते च्यवनाय ऊती वर्पः अधिधत्थ— जीर्ण और क्षीण च्यवनके लिये संरक्षक सुंदर रूप तुमने दिया था । वह उसे योग्य अन्नसे प्राप्त हुआ था ।

(मर्त-भोजनं) मनुष्यके हितके लिये उसे योग्य भोजन मिलना चाहिये । (अदितिः सुहवा) जो ऐसे भोजन देती है वह विशेष प्रशंसा करने योग्य है । (सना भोजनानि) अन्न टिकनेवाला हो, सदा वैसा ही मिलता रहे । (महिष्मन्तं भोजनं) शक्ति बढानेवाला अन्न हो जिसके खानेसे मनुष्य बलवान और निरोग हो जाय । (जरते ऊती वर्पः) क्षीण वृद्धको भी सुंदर रूप तथा तारुण्य प्राप्त हो ऐसा भोजन मिलना चाहिये, सब आवश्यक जीवन सत्त्व अन्नमें रहे तो उससे शक्ति प्राप्त होती है और वृद्ध आयुमें भी तारुण्य प्राप्त होता है ।

११८ स विश्वभोजसा अहया योजते— वह अन्न प्राप्त होनेसे तेजस्वी होता है ।

१८१।४ वाजान् नः उपमिमीहि— अन्न और बल हमें प्राप्त हो ।

१८५।४ अन्धसा मदेषु समुवोच— अन्नरसका आनन्दके समय वर्णन कर ।

१९१।१ नः इषे धाः— हमें भरपूर अन्न दे दो ।

३५५।१ प्रजायै वयः धुः— प्रजाके लिये अन्न दिया जावे ।

३५६ त्रिपृष्ठैः महाभिः सोमैः आ पृणध्वं— दूध दही और सत्तुको सोमरससे मिला दो और वह अन्नरस भरपूर पीओ ।

३५१ साधुः वाजः— अन्न बलका साधक है।

३६५ नृभ्यः मर्तभोजनं आसुवानः— मनुष्योंके लिये मानवोंके लिये-सुयोग्य भोजन दो।

४१२।४ वाजसातौ वाजः अवतु— अन्नदानके समय प्राप्त हुआ अन्न हमारा संरक्षण करे।

५४२ इळाभिः घृतैः गव्यूतिं उक्षतं— अन्नों और घीसे मार्गका सींचन करो। मार्गमें अन्न और घी भरपूर मिलता रहे।

५७४ मघानि अन्धांसि प्र अस्थुः— आनंदवर्धक अन्न रखे हैं।

६१७ यन्तः सूरयः पृक्षः सचन्त- प्रयत्नशील ज्ञानी अन्न प्राप्त करते हैं।

७३१ अमृताय जुष्टं अर्कं अमृतासः नः आधासुः- अमरत्वके लिये योग्य अन्न हमें अमरदेव देते रहें।

७८९ विदथेषु वृजनेषु इषः पिन्वतं- यज्ञोंमें तथा युद्धोंके समय अन्न बढाओ।

मनुष्यका अन्नके विना चल नहीं सकता। अन्नमय प्राण और प्राणमय पराक्रम होता है। इस कारण योग्य अन्न मनुष्यको मिले ऐसा प्रयत्न होना चाहिये। (अरुषा विश्वभोजसा) तेज, कान्ति बढानेवाला भोजन होना चाहिये। अन्नका नाम वेदमें 'वाजः' है और इस 'वाजः' का अर्थ 'अन्न और बल' है। अर्थात् अन्न वह है कि जो शरीरका पोषण करके शरीरमें बल बढावे। बल घटानेवाला, रोग बढानेवाला खाद्य अन्न नहीं कहलायेगा। इसी तरह अन्नका नाम 'अन्धस्' है। प्राण धारण करने, दीर्घजीवन देनेकी शक्ति अन्नसे प्राप्त होनी चाहिये। ऐसा अन्न मनुष्य खाएं कि जिससे उनका बल बढे और उनको दीर्घ जीवन प्राप्त हो। (प्रजायै वयः) संतान देनेवाला अन्न चाहिये। अन्नसे मनुष्यमें वीर्य निर्माण होना चाहिये और उस वीर्यसे उत्तम संतान होने चाहिये। अर्थात् ऐसी कोई वस्तु खानी नहीं चाहिये कि जिससे संततिका उच्छेद हो, वीर्य क्षीण हो अथवा रोगी संतान हो।

(मद्योभिः सोमैः) दूध दही तथा सत्तूके साथ सोमरस मिलाकर वह पेय पीना योग्य है। वह पेय बल, उत्साह और बुद्धिको बढाता है। (घृतैः इळाभिः) घीसे भरपूर मिलाया हुआ अन्न अच्छा है, वह सात्विक है और नीरोगिता बढानेवाला है। (मघानि अन्धांसि) आनन्द बढानेवाले और प्राणशक्तिको धारण करके दीर्घ आयु देनेवाले अन्न होने चाहिये। प्राणकी क्षीणता बढानेवाले अन्न न हों। वे खाने योग्य नहीं है।

इस तरहका अन्न लेने योग्य है। निरोगिता, बल, उत्साह, कार्यक्षमता, दीर्घायु, तेजस्विता, बुद्धि, वीर्य बढानेवाला अन्न हो। जो इनका नाश करता है वैसा अन्न सेवन करने योग्य नहीं है।

जल

अन्नके सेवनके साथ जलका सेवन भी करना चाहिये। इसलिये जलका निर्देश देखना चाहिये (४२५ दैवीः आपः) जल दिव्य शक्तिसे युक्त है। (पुनानाः) जलसे पवित्रता होती है, शरीरके अन्दरकी तथा बाहरकी भी पवित्रता जलसे होती है।

४२६ दिव्या आपः—आकाशसे वृष्टिसे मिलनेवाला जल,

स्रवन्ती— जो झरनेमें स्रवता है।

खनित्रिमाः- खोदकर कूंवे आदिसे जो प्राप्त होता है।

स्वयंजाः- स्वयं जो भूमीसे ऊपर आता है।

शुचयः पावकाः— ये जल शुद्धता करनेवाले हैं, नीरोगिता बढानेवाले हैं।

४१९ कुलायतं विश्वयत् नः मा आगन्— स्थानमें रहनेवाला और चारों ओर फैलनेवाला विष हमसे दूर हो, जल प्रयोगसे विष दूर हो जाता है। (**अजकावं दुर्दृशीकं तिरः दधे**) रोग और दृष्टिकी मन्दता दूर हो। जल प्रयोगसे ये दोष दूर होते हैं।

४३१ देवीः शिपदाः= दिव्य जल शिपद रोगको दूर करें। पांव बडा होनेका नाम शिपद रोग है। जलचिकित्सासे वह रोग दूर हो सकता है। इस तरह जल प्रयोगसे आरोग्य मिल सकता है।

आपत्ती दूर हो

१९ अवीरतै, दुर्वाससे, अमतये, क्षुधे, मा परा दाः— हमें दुर्बलता, बुरे कपडे पहननेकी दरिद्रता, निर्बुद्धता, भूख आदि आपत्ति न प्राप्त हो।

१९ दमे वने नः मा आजुहूर्थाः— घरमें और वनमें हमें कष्ट न हो।

६६५ तं मर्तं अंहः न, तपः न, दुरितानि न, परिह्वृतिः न नशते यस्य अध्वरं गच्छथः— उस मर्त्यको पाप, ताप, क्लेश, विनाश नहीं सताते, जिसके अहिंसक यज्ञ कर्ममें आप जाते हैं।

आपत्तियां इन मंत्रोंमें गिनाई हैं। वे ये हैं —(अ-वीरता) भीरुता, दुर्बलता, डरपोकपन, (दुर्वासाः) बुरे फटे मैले कपडे पहननेकी दरिद्रता, (अ-मतिः) बुद्धिहीनता, (क्षुधा) भूख, अन्न न मिलनेसे होनेवाली दुरवस्था, (अंहः) पाप, (तपः) ताप, कष्ट, संकट, (दुरितानि) अन्तःकरणके हीन भाव, (परिह्वृति) लूट, नाश, न्यूनता, (नाश) विनाश मृत्यु, अपमृत्यु, रोगादिके क्लेश। ये सब आपत्तियां है। ये आपत्तियां हमारे पास नहीं आनी चाहिये। ये आपत्तियां हमसे दूर हों। हमें घरमें कष्ट न हों। और हम वनमें गये तो वहां भी हमें कष्ट न हों। हम सदा सर्वदा आनंद प्रसन्न रहें और उन्नतिके कार्य करते रहे।

कीर्ति

५२६।३ जने नः आश्रवयतं— लोगोंमें हमारी कीर्ति हो। लोगोंमें, राष्ट्रमें, समाजमें हमारा यश चारों ओर फैले। केवल इच्छा मात्रसे यह यश नहीं फैल सकता। ज्ञान, विज्ञान, संपन्नता जिसके पास होगी, जो शौर्य, वीर्य पराक्रममें विशेष प्रभावी होगा, जिसके पास बहुत धन होगा और जो उसका उपयोग दानमें करता जायगा; जनताके कल्याणके कार्य जो करता रहेगा, जो शिल्पी होगा और जो अप्रतिम कुशल होगा, उसका यश फैलता है। चारों दिशाओंमें ऐसे मनुष्योंकी कीर्ति गाते हैं।

जिन्होंनें जनहितके महान महान कार्य किये है, उनका ही यश गाया गया है। जो जनताका अहित करते हैं, जो आत्म-भोगके लिये दूसरोंको कष्ट देते है। उनका नाम भी कोई नहीं लेता। प्रत्येक मनुष्य यश और कीर्ति तो चाहते हैं, परंतु जनहित करनेके लिये आत्म समर्पण नहीं करते, उनका यश कैसे फैलेगा? इसलिये मनुष्य कीर्ति चाहें और उसके लिये आवश्यक आत्म यज्ञ भी करें।

सौंदर्यकी इच्छा

५१।४ वयं अप्स्वः मा— हम सौंदर्यहीन न हों। अर्थात् हम सुन्दर बनें, अपनी सुंदरता बढावें।

१४७ पिशा अस्मान् अभिशिशाहि— सौंदर्यसे हमें युक्त करो।

सब लोग सुंदरता चाहते हैं। (वयं अ-प्स्वः मा) हम कुरूप न बनें। हमारी सुंदरता बढे। हम सुंदर दीखें। (पिशा अस्मान् अभिशिशाहि) सौंदर्यसे हम सुंदर दीखें। ऐसी इच्छा मनुष्यकी रहती है। परमेश्वर (सु-रूप-कृत्नु। ऋ०) सुंदर रूप बनानेवाला है। जो सुंदरता इस विश्वमें दीखती है वह परमेश्वर बनाता है। प्रत्येक रूपमें जो आकर्षकता है वह ईश्वरसे प्राप्त है। विश्वभरमें सौंदर्य ओतप्रोत भरा है। आकाशमें सूर्य चंद्र नक्षत्रका सौंदर्य, पृथ्वीपर पर्वत, नदियों, वृक्ष, वनस्पति, फूल-पत्तों आदिकी सुंदरता अपूर्व है। प्रत्येक फूल पत्ता, तृण, वनस्पति आदि सबमें सौंदर्य है। इस विश्वमें सुन्दर नहीं ऐसा कोई पदार्थ नहीं है। चारों ओर सब वस्तुएं सज धज कर सुन्दर बनकर ऊपर आरही है, ऐसे सुंदर विश्वमें कोई मनुष्य आना चाहे तो वह सुंदर बनकर ही आजावे। अपनी सुंदरता बढानेका यत्न करना मनुष्यको योग्य है। विश्व परमेश्वरका रूप है अतः वह सुंदर है, उसमें सुंदर बनकर ही आना चाहिये। वस्त्र, अलंकार, पुष्पमाला आदि धारण करके मनुष्य अपनी सुंदरता बढावे और वह यज्ञादि समारंभ जहां होते हैं वहां जाय।

निंदा

२२४।२ निनित्सोः शंसं आरे कृणुहि— निन्दककी निन्दाके शब्द दूर कर, वे हमारे पास न पहुंचे।

३१८।१ निनित्सोः शंसं अ-धुं कृणोत— निंदककी निंदाको निस्तेज करो।

६२६।१ पुरुषता नः बर्हिः निंदे मा कः— मानव समाजमें हमारे पौरुष कर्मकी निंदा न हो। हमारे पौरुष प्रयत्नकी सर्वत्र प्रशंसा ही होती रहे।

जगत्में (निनित्सुः) निंदक होते ही हैं, वे भले मनुष्यकी भी निंदा करते है। फिर जहां दोष होंगे, उसकी निंदा किये विना वे रहेंगे नहीं। इसलिये हमारा आचरण ऐसा उत्तम होना चाहिये कि जिसके सामने उन निंदकोंकी निंदा निस्तेज सिद्ध हो जाय। हमारा आचरण लोग देखेंगे, और उनकी निंदाके शब्द वे सुनेंगे और वे ही स्वयं कहेंगे कि यह निंदा असत्य है। इस तरह (शंसं अ-धुं) निंदाको फीका निस्तेज बनाया जा सकता है। अपने श्रेष्ठ आचरणसे निन्दकोंकी निंदा निस्तेज करनी चाहिये। हमारे पौरुष प्रयत्न, हमारे वीरताके कर्म ऐसे श्रेष्ठ हों, कि कोई निंदक उनकी निंदा करनेका साहस ही न कर सकें।

तरुण

१०३।२ **चित्रभानुं विश्वतः प्रत्यञ्चं यविष्ठं नमसा अगन्म**— विलक्षण तेजस्वी सब ओरसे जिसके पास लोग जाते हैं ऐसे तरुण वीरके पास नमस्कार करते हुए हम जाते हैं।

७५७ **नर्यः वृषा वृषभः शिशुः**— मानवोंका कल्याण करनेवाला बलवान तरुण (यज्ञियासु योषणासु) पवित्र स्त्रियोंमें रहता है और (वाजिनं दधाति) बलवान पुत्रको उत्पन्न करता है।

तरुण पुरुष कैसा हो, वह यहां देखिये (चित्रभानुं) अत्यंत तेजस्वी (विश्वतः प्रत्यञ्चं) चारों ओरसे जिसको देखनेके लिये लोग आते हैं, जो सबके लिये प्रणाम करने योग्य है, (नर्यः) मनुष्योंका हित करनेमें तत्पर रहनेवाला (वृषा वृषभः) बलवान् बैल जैसा हृष्टपुष्ट और वीर्यवान् ऐसा तरुण हो। निस्तेज निर्वीर्य, जनताके हितके कार्य न करनेवाला, निर्बल, विद्याहीन, जिसका मुख कोई देखना नहीं चाहते, ऐसा पुत्र किसीको न हो।

ऐसा तरुण पुरुष अपनी विवाहित पवित्र स्त्रीमें बलवान पुत्र उत्पन्न करता है। अर्थात् ऐसे तरुण-तरुणीका विवाह संबंध हो और इनसे उत्तम संतान निर्माण हो। अब तरुणी कैसी होनी चाहिये वह देखिये—

तरुणीका प्रेम

६ **यं सुदक्षं हविष्मती घृताची युवतिः दोषा-वस्तोः उपैति, एनं स्वा वसूयुः अरमतिः उपैति**— उस उत्तम दक्ष और बलवान तरुणके पास अन्न और घी लेकर दिनमें और रातमें तरुणी पहुंचती है, कि जिनके पास धन कमानेवाली बुद्धि होती है। जो तरुण धन कमाता और जो बुद्धिमान होता है, उसपर तरुण स्त्री प्रेम करती है और उत्तम अन्न और घी लेकर उसकी सेवामें तत्पर रहती है।

६३४।१ **युवतिः योषा न उपो रुरुचे**— तरुणी स्त्री वस्त्रालंकारोंसे सजती है,

६३५।१ **विश्वं प्रतीची सप्रथा उदस्थात्**— सबसे प्रथम स्त्री उठे।

६३५।२ **रुशत् शुक्रं वासः बिभ्रती हिरण्यवर्णा सुप्रतीकसंदृक् अरोचि**— चमकीला स्वच्छ वस्त्र धारण करके सुवर्णके रंगवाली स्त्री चमकती हुई आरही है।

६३६।४ **चित्रामघा विश्वं अनुप्रभूता**— धनवाली विश्वके सन्मुख आती है।

उत्तम दक्ष, बुद्धिमान् और धनवान तरुणपर स्त्री प्रेम करती है और मनःपूर्वक उसीकी सेवा करती है। वह पहिले उठती है, वस्त्र आभूषणोंसे सजकर आती है और अपनी पतिका प्रेम संपादन करती है।

मं० ६३४-३५ ये मंत्र उषाका वर्णन करते हुए तरुण स्त्रीका वर्णन करते है। तरुण स्त्री किस तरह बर्ताव करे यह उपदेश उषाके मंत्रोंसे विदित हो सकता है। इसलिये यहां उषाके कुछ मंत्र देखिये—

उषा

६२९।१ **सूर्यस्य प्राचीना उदिता बहुलानि अहानि आसन्**— सूर्यके पूर्व उदित बहुत दिन थे। सूर्यके उदय होनेके पूर्व बहुत दिन उषःकालके जाते हैं।

६२९।२ **उषा जारः इव पर्याचरन्ती, यतीव न-** उषा जारकी सेवा करनेके समान पतिसेवा करती है, संन्यासिनी-के समान पतिके विषयमें उदास नहीं रहती।

६३२ **गवां नेत्री वाजपत्नी**— गौओंको चलनेवाली उषा अन्न पकाती है।

सूर्यका उदय होनेके पूर्व (बहुलानि अहानि आसन्) बहुत दिन होते हैं। इन दिनोंमें उषःकालही होता है और सूर्य दर्शन नहीं होता है। उत्तर ध्रुवके पास ऐसी स्थिति है। ३० दिन तक वहां उषःकाल ही रहता है और पश्चात सूर्यका उदय होता है। इस तरह उदित हुआ सूर्य छः मासतक ऊपर ही रहता है। यहां सूर्यके उदय होनेके पूर्व उषा उठती है। इससे पतिके पूर्व प्रातःकाल पत्नीको उठना चाहिये यह बोध मिलता है।

उषा उठकर गौओंकी सेवा करती है, अन्नपानका प्रबंध करती है, वैसा स्त्री उठे, गौओंसे दूध निकाले और प्रातःकालके उपहारका प्रबंध करे। जैसी जारिणी अपने जारकी सेवा करती है वैसी प्रत्येक स्त्री अपने पतिकी सेवा करे, संन्यासिनी जैसी पतिसे विमुख न होवे। यद्यपि जारिणीकी उपमा हीन है तथापि सेवाकी तत्परताकी दृष्टिसे वह उत्तम है। तत्परता ही यहां देखनी है बाकी बातें लेनी या देखनी नहीं है।

धनवाली स्त्री

३१ मघोनी योषणे नः सुविताय आश्रयेतां- धनवाली दो स्त्रियोंका हमारी सुविधाके लिये हम आश्रय करें। यहां स्त्रियां भी धनवाली होती हैं और वे लोगोंको आश्रय देती हैं ऐसा कहा है।

१४७ जनिभिः राजा— अनेक स्त्रियोंके साथ राजा रहता है।

६१० मानुषी देवी मर्तेषु अवस्युं धेहि—हे मनुष्योंमें देवि उषा! मानवोंमें संरक्षक संतान दे।

६२३।१ (स्त्री) ऋषिस्तुता— ऋषियों द्वारा प्रशंसित स्त्री हो।

६२३।३ मघोनी वसूनां ईशे- धनवती स्त्री धनोंपर स्वामित्व करती है,

६२४ शुभ्रा विश्वपिशा रथेन याति- शुभ्र उषा सबसे तेजस्वी रथसे जाती है।

६२४ विधते जनाय रत्नं दधाति— प्रयत्नशील मनुष्यको उषा धन देती है।

स्त्री ऐसी विदुषी हो कि वह धनकी स्वामिनी बन कर रहे। स्त्रीके पास धन हो या न हो इस विषयमें आजके लोग संदेह करते हैं। इस विषयमें वेदने निर्णय दिया है कि (मघोनी योषणे) स्त्री धनवाली हो, स्त्रीके अधिकारमें धन रहे। (मघोनी वसूनां ईशे) धनवाली स्त्री धनोंपर अधिकार चलावे। इस तरह स्त्री धनकी स्वामिनी होती है और उसके अधिकारमें नाना प्रकारके धन होते हैं।

स्त्री (ऋषि-स्तुता) ऋषियों द्वारा प्रशंसित होने योग्य हो। ऐसी विदुषी और ऐसी कर्तृत्व शालिनी हो कि सब विद्वान् उसकी प्रशंसा करें। ऐसी धनवती स्त्री (विधते जनाय रत्नं दधाति) प्रयत्नशील मनुष्यको वह रत्न देती है, धन देती है। (शुभ्रा विश्वपिशा रथेन याति) श्वेत वस्त्र पहन कर वह सुंदर रथमें बैठकर बाहर जाती है।

यह विदुषी स्त्री (मानुषी देवी) मनुष्योंके घरमें देवीके समान पूज्य होकर रहती है और (अवस्युं दधाति) संरक्षक वीर पुत्र उत्पन्न करती है। विदुषी स्त्री के अंदर विद्वान् सुयोग्य पति के द्वारा उत्तम वीर संतान उत्पन्न होते हैं।

(जनिभिः राजा) स्त्रियोंके साथ राजा रहता है, इस वेदवचनसे ऐसा प्रतीत होता है कि राजा लोग अनेक स्त्रियां भी करते हैं। एक पुरुषकी एक स्त्री यह नियम होगा, परंतु कई प्रसंगमें एक पुरुषको अनेक स्त्रियां करनेका भी अधिकार होगा। दशरथकी अनेक स्त्रियां थीं, चन्द्रकी अनेक स्त्रियोंका आलंकारिक वर्णन है। इस तरह अनेक स्त्रियां होनेके भी वर्णन हैं। विचार करना चाहिये कि इन दोनों प्रकारके वचनोंकी संगति किस तरह लगानी है।

पति-पत्नी

२३१ एकः समानः पतिः जनीः इव— एक समान पति अनेक स्त्रियोंको वश करता है। यहां एकको अनेक स्त्रियां होनेका उल्लेख है।

अनेक स्त्रियोंको वशमें रखनेवाला एक समान पति है। इस वर्णनमें अनेक स्त्रियोंके समान एक पतिका उल्लेख है। यह उल्लेख स्पष्ट है। इन्द्रके वर्णनमें यह मन्त्र आया है। एक इन्द्र अनेक कीलोंपर अपना अधिकार चलाता है, इसके लिये यह उपमा दी है, जिस तरह एक पति अनेक स्त्रियोंको वशमें रखता है। इस उपमामें भी एक इन्द्रके आधीन अनेक कीले होते हैं, वैसे एक पतिके आधीन अनेक स्त्रियां होती है। इस उपमाका विचार करनेपर भी एक पतिकी अनेक स्त्रियां होनेकी मान्यता मिली है ऐसा प्रतीत होता है।

ब्राह्मण ग्रन्थमें—

एकस्य बह्वयो जाया भवन्ति, नहि एकस्याः सहपतयः।

'एक पुरुषको अनेक स्त्रियां होती हैं, परंतु एक स्त्रीको एक समय अनेक पति नहीं होते' यहां भी अनेक पत्नियां करनेके लिये मान्यता है। एक यूप पर अनेक रसियां बांधी जाती है, उसके समान एक पतिको अनेक स्त्रियां होती हैं यह उपमा दी है। तात्पर्य एक पतिको अनेक स्त्रियां होनेका विषय यह ऐसा है।

अपना घर

११।३ नूर्णां मा निषदाम— दूसरोंके घरमें हम न रहें। हम अपने घरमें रहें। रहनेका घर अपना हो।

१०३।१ स्वे दुरोणे समिद्धः दीदाय-अपने घरमें प्रदीप्त होकर तेजस्वी बन। अपने स्थानमें जागते हुए प्रकाशित हो।

अग्नि अपने वेदीरूप घरमें रहकर प्रदीप्त होता है, वैसा मनुष्य अपने घरमें रहे और प्रकाशित होवे।

१७८।१ सखायः प्रियासः नरः शरणे मदेम— हम सब एक कार्य करनेवाले, परस्पर प्रीति करनेवाले नेता, अग्रगामी होकर अपने घरमें आनंदसे रहेंगे।

३६१।२ नः अस्तं सुवीरं रयिं पृक्षः— हमारा घर उत्तम वीर संतानसे युक्त हो और धन तथा अन्नसे भरपूर हो।

३६१ मर्ताः यं अस्ववेशं कृण्वन्तः— मनुष्य उसको अपने निज घरमें रहने नहीं देते। उसको सब बुलाते हैं।

दूसरेके घरमें नहीं रहेंगे

यहां कहा है कि (नृणां मा निषदाम) दूसरोंके घरोंमें न रहें। दूसरोंके घरमें रहनेकी आपत्ति हमपर न आवे। हम अपने घरमें रहें। मनुष्योंकी प्राप्ति जहां नहीं होती वहां हम न रहें। जहां मानवोंका आना जाना होता है ऐसे स्थानपर हम रहें, क्योंकि हमें मानवोंमें संघटना करना है। अतः जहा मानव न होंगे वहां रहकर हमें करना क्या है ?

(स्वे दुरोणे समिद्धः) अपने निजके घरमें हम प्रकाशित होंगे, जैसा अग्नि अपने घरमें, वेदीमें रहता है और वहां प्रदीप्त होता है, वैसे हम अपने घरमें रहकर प्रकाशित होते रहेंगे, दूसरोंको सन्मार्ग दिखाते जायगे।

(सखायः नरः शरणे मदेम) एक कार्य करनेवाले अर्थात् सुसंघटित होकर, नेता अग्रणी बनकर हम अपने घरमें आनन्द प्राप्त करेंगे और अपने अनुयायियोंको भी आनन्द प्राप्तिका मार्ग बतायेंगे।

(नः अस्तं सुवीरं रयिं पृक्षः) हमारा घर उत्तम वीर संतानों-पुत्र पौत्रोंसे, धनसे और अन्नसे भरपूर हो। किसी प्रकारकी न्यूनता न हो। वीर पुत्रोंसे युक्त घरमें हम रहेंगे।

नेता अपने घरमें नहीं रहता

(मर्ताः अ-स्व-वेशं कृण्वन्तः) मनुष्य-अनुयायी जन-नेताको अपने निज घरमें रहने नहीं देते। चारों ओर जाकर उसके लिये इतना कार्य करना पडता है, कि उसको अपने घर रहनेका अवसरही नहीं मिलता। यह नेताका लक्षण है। वह भ्रमण करता है और अपने अनुयायियोंका सुधार करता जाता है। वह अपने घरमें किस तरह बैठा रहे ?

१३४।१ येषां दुरोणे घृतहस्ता इळा प्राता आ निषीदति, तान् त्रायस्व— जिनके घरोंमें घी और अन्नके भरे पात्र लेकर अन्न परोसनेके लिये स्त्रियां सिद्ध रहती हैं, उनका संरक्षण कर।

१३४।१ द्रुहः निदः तान् त्रायस्व— द्रोही निंदकोंसे उनका संरक्षण कर।

१३४।३ दीर्घश्रुत् शर्म नः यच्छ— जिसकी कीर्ति दीर्घकालतक टिकी रहती है वैसा सुखदायी घर हमें दो।

१८१।५ स्तनि नः उपामिमीहि— रहनेके लिये घर हमें मिलें।

२१७।१ सदने योनिः अकारि—अपने स्थानमें रहनेके लिये घर किया है।

२२६ तविषीवः उग्र! विश्वा अहानि ओकः कृणुष्व — हे बलवान् वीर! तुम सबदिन अपने घरको सुरक्षित करो।

३९२ भद्रा उषसः अश्वावतीः गोमतीः वीरवतीः घृतं दुहानाः विश्वतः प्रपीताः नः सदं उच्छन्तु— कल्याण करनेवाली उषा देवी घोडों, गौवों, वीरोंसे युक्त होकर घी देती हुई, सब प्रकारसे संतुष्ट होकर हमारे घरोंको प्रकाशित करे।

४१४ क्षम्यस्य जन्मनः क्षयेण स चेतति— पृथ्वीके ऊपर जन्म लेनेवाले मनुष्यका निवास घरमें करानेके लिये वह वीर सचेत रहता है।

५४८।१ क्षयः सुप्रावीः अस्तु— घर सुरक्षित हो।

५७२ इरावत् वर्तिः यासिष्टं— अन्नवाले घरमें जाओ।

५९१ मनुषः दुरोणे घर्म अतापि— मानवोंके घरमें अग्नि जलता है।

६१७ मघवद्भ्यः छर्दिः ध्रुवं यशः यंसतः— धनी लोगोंको उत्तम घर और स्थायी यश दो।

७०८ बृहन्तमानं सहस्रद्वारं गृहं जगम— बडे विशाल हजार द्वारोंवाले घरमें रहेंगे।

७११ अहं मृन्मयं गृहं मो गमं— मैं मिट्टीके घरमें जाकर नहीं रहूंगा।

सु— सुंदर घरमें रहूंगा।

८८५ पस्त्यावान् मर्त्यः— घरवाला मनुष्य हो।

८९३ नः सुवीरं क्षयं धन्वन्तु— वीर पुत्र पौत्रोंवाला हमारा घर हो।

मिट्टीके घरमें नहीं रहेंगे

(७११ अहं मृन्मयं गृहं मो, गमं सु)- मैं मिट्टीकी झोपडीमें नहीं रहूंगा, परन्तु सुन्दर पक्के घरमें मैं निवास करूंगा। जो समझते हैं कि ऋषि लोग मिट्टीके घरोंमें रहते हैं और वैदिक सभ्यता हमें मिट्टीके झोपडीमें रहना सिखाती है, वे इस मंत्रको देखें और समझें कि वसिष्ठ ऋषि तो कहते हैं कि मैं मिट्टीके घरमें नहीं रहूंगा। परन्तु सुन्दर पक्के घरमें रहूंगा। यह ठीक भी है क्योंकि वसिष्ठ ऋषिके गुरुकुलमें हजारों छात्र पढते थे, वे सब मिट्टीकी झोपडीमें किस तरह रह सकेंगे।

हजार द्वारोंवाला घर

आगे वे ही कहते है कि (७०८ बृहन्तं मानं सहस्रद्वारं गृहं जगम) बडे विशाल आकारवाले हजार द्वार जिसमें हैं ऐसे घरमें जाकर हम निवास करेंगे। (६१७ ध्रुवं छर्दिः) स्थिर टिकनेवाला घर हो। आज तैयार किया, जोरसे हवा आयी, नदीका प्रवाह बढ गया और वह घर बह गया, तो वसिष्ठ ऋषिके गुरुकुलका-कि जहां सहस्रों छात्र पढते थे— क्या बनेगा। इसलिये पक्के मकानोंमें रहना ही योग्य है। 'बृहन्तं मानं सहस्रद्वारं' बडे विशाल परिमाणवाला घर हो जिसको हजार द्वार हैं ऐसा विशाल घर हो। जहां हजारों छात्रोंको पढना है वहां हजार द्वारोंवाला ही घर होना चाहिये। एक एक कमरेके लिये दो तीन द्वार रहे तो २००।३०० कमरेवाला तो यह घर होगा ही। ऐसे घरोंमें रहनेकी इच्छा करना योग्य है।' सहस्रों छात्रोंके साथ रहनेवाले ऋषि ऐसे ही विशाल मकानोंमें रहते होंगे, इसमें संदेह नहीं हो सकता।

घरोंका संरक्षण

१३४ द्रुहः निदः त्रायस्व।
५४८ क्षयः सुप्रावीः अस्तु।

'निंदकोंसे और द्रोहियोंसे घरका संरक्षण कर। घर सुरक्षित हो।' उस घरपर कोई हमला न करे, चोर लुटेरे डाकू उस घरको कष्ट न पहुंचा सकें। ऐसा सुरक्षित घर हो।

यशस्वी घर हो

(१३४ दीर्घश्रुत् शर्म) अत्यंत कीर्तिसे युक्त घर हो। यशस्वी घर हो। जिसकी कीर्ति सुनकर लोग उसकी ओर आकृष्ट होते हों ऐसा घर हो।

(४१४ क्षपेण चेतति) घरसे उत्तेजना मिले, घर देखनेसे उत्साह बढ जाय ऐसा घर हो। घर देखनेसे सब उत्साह दूर हो ऐसा घर न हो।

मंत्र ३९२ कहा है कि 'घोडे गौवें तथा बालबच्चे घरके चारों ओर घूमें, उषःकालके सूर्य किरण (सदं उच्छन्तु) घरको प्रकाशित करें ऐसा घर हो।

(५७२ इरावत् वर्तिः) घर धनधान्यसे संपन्न हो। दरिद्रता दुःख हानि घरके पास न आवे। ऐसे घर मनुष्यके हों। मनुष्य ऐसे उत्तम घरमें रहें और आनन्द प्रसन्न हों, घर बालबच्चे, पुत्रपौत्रसे युक्त हों और ऐश्वर्यसे संपन्न हों।

उत्तम पुत्र

११।१ शूने मा निषदाम— संतानरहित घरमें हम न रहें।

११।२ नृणां अशेषसः अवीरता मा— मनुष्योंको संतान-हीनता और अवीरता न प्राप्त हो।

११।४ प्रजावतीषु दुर्यासु परि निषदाम— पुत्र-पौत्रोंसे युक्त घरोंमें हम रहें।

११ यं अश्वी नित्यं उपयाति, प्रजावन्तं स्वपत्यं स्वजन्मना शेषसा वावृधानं क्षयं नः धेहि— जिस घरके पास घोडेपर बैठे वीर नित्य आते हैं, वैसा सन्तानवाला, उत्तम पुत्रोंवाला औरस संतानोंसे बढनेवाला अपना निवास स्थान हो।

१४ वाजी वीळुपाणिः सहस्रपाथः तनयः अक्षरा समेति— बलवान शस्त्रधारी सहस्रों धनोंसे युक्त पुत्र ज्ञानोंको प्राप्त करता है। पुत्र ज्ञानी भी हो और वीर तथा धनवान् भी हो।

१५।३ सुजातासः वीराः परिचरन्ति—उत्तम कुलीन वीरपुत्र ईश्वरकी पूजा करते हैं। वीर ईश्वरकी भक्ति करें।

२१।१ तनये मा आधक्—हमारा पुत्र न मरे।

२१।२ नर्यः वीरः अस्मत् मा विदासीत्— मानवोंका हित करनेवाला पुत्र हमसे दूर न हो

२१।३ सुहवः रण्वसंदृक् सहसः सूनुः— प्रेमसे बुलाने योग्य रमणीय और बलवान पुत्र हो।

३४ तत् तुरीयं पोषयित्नु विष्यस्व, यतः कर्मण्यः सुदक्षः देवकामः वीरः जायते— वह सत्वर पोषण

करनेवाला वीर्य हमें दो, कि जिससे कर्ममें कुशल, उत्तम दक्ष और ईश्वर भक्ति करनेवाला वीरपुत्र उत्पन्न होता है। पुरुषका वीर्य उत्तम निर्दोष हुआ तो संतान उत्तम होती है, इसलिये पुत्रकी कामना करनेवाले लोग अपना वीर्य उत्तम प्रभावशाली बनानेका यत्न करें।

३६ सुपुत्रा अदितिः बर्हिः आस्ताम्-- जिसके उत्तम तेजस्वी पुत्र है वह माता अदिति यहां आसनपर बैठे। सुपुत्रोंकी माताका सब सत्कार करें।

४५।१ मात्रोः सुक्रतुः पावकः देवयज्यायै आजनिष्ठ-- मातापितासे उत्तम कर्म करनेवाला पवित्र पुत्र दिव्य कर्म करनेके लिये ही उत्पन्न होता है। ऐसा ही दो अरणियोंसे अग्नि यज्ञ करनेके लिये उत्पन्न होता है।

५१।३ वयं अवीराः मा— हम निर्वीर्य न बनें, हम पुत्र हीन न बनें।

५३।३ अन्यजातं शेषः नास्ति-- दूसरेका पुत्र अपना औरस पुत्र नहीं हो सकता, औरस पुत्रकी योग्यता दत्तक पुत्रको नहीं हो सकती।

५४।१ अन्योदर्यः सुशेवः अरणः प्रभाय नहि- दूसरेका पुत्र उत्तम सेवा करनेवाला, अपने पास आनेवाला होनेपर भी औरस पुत्रके समान ग्रहण करने योग्य नहीं होता।

५४।१ अन्योदर्यः मनसा मन्तवै नहि— दूसरेका पुत्र मन से अपने औरस पुत्रके समान मानने योग्य नहीं होता।

५४।२ सः (अन्योदर्यः) ओकः एति-वह दूसरेका पुत्र अपने मातापिताके घर ही जायगा। उसका मन इधर नहीं लगेगा।

५४।४ नव्यः वाजी अभीषाट् नः एतु— नवीन बलवान् और शत्रुका पराभव करनेवाला औरस पुत्र हमें उत्पन्न हो।

१८६।१ वृषा वृषणं रणाय जजान— बलवान् पिताने बलवान् पुत्रको युद्ध करके शत्रुनाश करनेके लिये निर्माण किया है।

१८६।२ नारी नर्यं ससुव— स्त्री मानवोंका हित करनेवाला पुत्र उत्पन्न करे। मनुष्यका यह ध्येय रहे।

१८६।२ यः नृभ्यः सेनानीः प्र अस्ति— जो मानवोंका हित करनेवाला तथा सेनाका संचालन करनेवाला प्रभावी नेता हो सकता है ऐसा पुत्र मातापिता उत्पन्न करें।

१८६।४ स इनः सत्वा गवेषणः धृष्णुः-- वह पुत्र स्वामी, सत्त्ववान्, गौओंकी खोज करनेवाला तथा शत्रुका धर्षण करनेवाला हो।

११५ जरित्रे शुष्मिणं तुविराधसं—ज्ञानीको बलवान् कलाओंमें प्रवीण पुत्र हो।

२२०।१ वृषणं शुष्मं वीरं दधत्— हमें बलवान और सामर्थ्यवान् पुत्र चाहिये।

२२०।१ हर्यश्वः सुशिप्रः— पुत्र शीघ्रगामी घोडे और उत्तम कवच धारण करनेवाला हो।

२१०।१ विश्वाभिः ऊतिभिः सजोषाः स्थविरेभिः वरीवृजत्— वह वीर पुत्र सब प्रकारके संरक्षक साधनोंसे युक्त, उत्साही और निपुणोंके साथ रहे और शत्रुओंको दूर करे।

२११।४ नः क्षेमतं आधिधाः— हमें धन कमानेवाला पुत्र चाहिये।

२३० पुत्राः पितरं न सबाधः समान दक्षाः अवसे हवन्ते— पुत्र जैसे पिताको बुलाते हैं, उस तरह इकट्ठे मिले समान भावसे दक्ष रहनेवाले वीर अपनी सुरक्षाके लिये इन्द्रको बुलाते हैं।

३२६ सुपाणिः त्वष्टा पत्नीः वीरान् दधातु— निर्माता प्रभु हमारी पत्नियोंमें उत्तम वीर निर्माण करे।

४०१ विभृतासः पुत्रासः मातरं— भरण पोषण होनेवाले पुत्र माताकी गोदमें बैठते हैं।

४४३ पिता पुत्रान् इव नः जुषस्व— पिता पुत्रोंका पालन करता है वैसा तुम हमारा पालन कर।

५१०।१ तस्मिन् तोकं तनयं दधानाः— उस शुभ कर्ममें हम अपने बालबच्चोंको रखेंगे, प्रवीण बनायेंगे।

५६३।३ सूनुः पितरा न विवक्मि— पुत्र पिताके साथ जैसा बोलता है, वैसा मैं बोलता हूं।

५६८।३ तोके तनये तूतुजानाः- बालबच्चोंके लिये त्वरा करो।

७६४ जनीयन्तः पुत्रीयन्तः सुदानवः अग्रवः— स्त्रीवाले पुत्र चाहनेवाले दाता अग्रेसर हों।

संतानोंसे भरे हुए घर हों

घरका भूषण संतान है। जिसमें बालबच्चे हैं ऐसा घर हो।
(९१ शूने मा निषदाम) हम संतान-रहित घरमें नहीं

रहेंगे। हम ऐसे घरमें रहेंगे कि जिस घरमें बाल बच्चे बहुत हों। बाल बच्चोंसे शून्य घरमें रहनेका दुर्भाग्य हमें कदापि प्राप्त न हो। (११ **प्रजावतीसु दुर्यासु परि निषदाम**) जिस घरमें बाल बच्चे बहुत हैं उस घरमें हम रहेंगे। (११ **नृणां अशेषसः मा**) मनुष्योंके दैवमें पुत्रहीनता न हो। पुत्र हीनता बडी बुरी अवस्था है। यह महादुर्दैव है। पुत्रहीनता हमें कदापि प्राप्त न हो। (१२ **प्रजावन्तं स्वपत्यं स्वजन्मना शेषसा वावृधानं क्षयं नः धेहि**) बालबच्चोंसे भरा, अपने निज संतानोंसे परिपूर्ण, औरस पुत्रोंसे बढनेवाला घर हमें मिले। हमारे घरमें औरस पुत्र पौत्र तथा प्रपौत्र हों। पुत्र पौत्रोंसे हमारा घर भरा हो। (५२ **वयं अवीरा मा**) हम कभी वीर संतानसे रहित न हों अर्थात् हमें सन्तान हों और वीर सन्तान हों।

दत्तक पुत्र नहीं चाहिये

दत्तक पुत्रकी निंदा वसिष्ठ मंत्रोंमें दीखती है। (५३ **अन्यजातं शेषः नास्ति**) दूसरेका गोदमें लिया दत्तक पुत्र औरस संतानकी योग्यता नहीं पा सकता। औरस संतानका मूल्य कुछ और ही है।

५४ अन्योदर्यः सुशेवः अरणः प्रभाय नहि।

दूसरेके पेटसे जन्मा उत्तम सेवा करनेवाला, प्रेमसे पास आनेवाला होनेपर भी वह औरसपुत्र जैसा स्वीकारके योग्य नहीं होता। वह (अ-रणः) न लडनेवाला भी हुआ तो भी वह औरस जैसा नहीं समझा जायगा। जो दूसरेका पुत्र है वह दूसरेकाही रहेगा और जो अपना होगा वह अपनाही रहेगा। इसलिये दत्तक पुत्र लेनेका दुर्दैव हमारे नसीबमें न हो। हमारे पास अपना औरस वीर पुत्र हो। ऐसे सुपुत्रोंसे हमारा घर भरा रहे।

५४ अन्योदर्यः मनसा मन्तवै नहि।

' दूसरेका पुत्र दत्तक लेनेकी बात मनमेंभी लाने योग्य नहीं है। ' वह दूसरेका पुत्र (५४ **सः ओकः एति**) अपने घर ही जायगा। अपने मातापिताओंके पास ही आकर्षित होगा। वह हमारे पास कदापि नहीं रहेगा। इस दत्तक पुत्र लेनेकी बात मनमें लाने योग्य भी नहीं है।

ज्ञानी वीर धनी पुत्र हो

केवल औरस सन्तान नहीं चाहिये, परंतु वह ज्ञानी वीर पुरुषार्थी विजयी धन प्राप्त करनेमें समर्थ ऐसा संतान हो-

१४ वाजी वीळुपाणी सहस्रपाथः तनयः अक्षरा समेति।

बलवान्, शस्त्रधारी, सहस्रों मार्गोंसे धन कमानेवाला पुत्र ज्ञानी भी हो। पुत्र ऐसा सुलक्षणी होना चाहिये। १५ **सुजातासः वीराः परिचरन्ति**) उत्तम कुलीन सुपुत्र जिस समय अपनी सेवा करनेके लिये तत्पर रहते हैं उस समय अपने घरका सच्चा आनंद मिल सकता है। इस तरह इस संसारसे आनंद प्राप्त करना चाहिये।

२१ नर्यः वीरः अस्मत् मा विदासीत्।

' जनताका हित करनेवाला वीर पुत्र हमें उत्पन्न हो और वह हमसे दूर न जाय। ' यही पुत्र घरकी शोभा है। (२१ **सुहवः रण्व-संदृक् सहसः सूनुः**)— उत्तम प्रेमसे बुलानेयोग्य रमणीय और बलवान् पुत्र हो (३४ **कर्मण्यः सुदक्षः देवकामः वीरः**) पुरुषार्थी, दक्ष, ईश्वरभक्त और वीर पुत्र हो।

५४ नव्यः वाजी अभीषाट् नः एतु।

' नवीन बलवान् शत्रुका पराभव करनेमें समर्थ पुत्र हमें उत्पन्न हो।' (१८६ **वृषा रणाय जज्ञे**) बलवान् पुत्र शत्रुके साथ युद्ध करनेके लिये उत्पन्न होता है ऐसा वीरपुत्र हमें चाहिये। (१८६ **नारी नर्यं ससूव**) पत्नी जनताका हित करनेवाले सुपुत्रको उत्पन्न करती है। सब लोगोंके कल्याण करनेवालेको ' नर्य ' (नरेभ्यो हितं) कहते हैं। ' पाञ्च-जन्यं, (पञ्चजनेभ्यो हितं) पांचों प्रकारके मनुष्योंका हित करनेवाला पुत्र हो, सार्वजनिक हित करनेके कार्यमें तत्पर पुत्र हो यह भाव यहां है।

१८६ यः नृभ्यः सेनानीः अस्ति।

जो पुत्र मानवोंका हित करनेके लिये सेनानीका कार्य कर सकता है ऐसा पुत्र हो। मनुष्य (७६४ **जनीयन्तः पुत्री-यन्तः सुदानवः अग्रवः**) पत्नी करें, पुत्रवान हों, दान दें और अग्रभागमें रहकर धुराका कार्य करें।

यह इच्छा होनी चाहिये। मेरे पुत्र विद्वान् हों, वीर हों, युद्धमें जानेके लिये उत्सुक हों, अनेक उद्योग करके धन कमानेवाले हों, धन कमाकर उत्तम रीतिसे दान दें, उत्तम सत्पात्रमें दान दें, जनताका सुख बढानेके कार्य करें, कार्य करनेमें तत्पर-

तासे आगे बढें, अनुयायियोंको लेकर आगे बढें, अपना, अपने घरका तथा राष्ट्रका संरक्षण करें, अपने घरको शत्रुकी बाधा होने न दें। (**११ तनयं मा बाधक्**) घरके बालबच्चे न मरें। वे दीर्घजीवी हों।

(**३६ सुपुत्रा बर्हिः आस्तां**) उत्तम वीर पुत्रोंकी माताका सम्मान होता रहे। समाजमें वीर पुत्रोंका प्रसव करनेवाली माताका आदर हो।

वसिष्ठ मंत्रोंमें पुत्रके विषयमें ये भाव प्रकट हुए हैं। अच्छे श्रेष्ठ वीर (**७१५ सुअपत्यानि चक्रुः**) उत्तम संतान निर्माण करते हैं। सुप्रजा निर्माण करनेका यत्न हरएकको करना चाहिये।

बच्चेकी प्यार

३० मातरा शिशुं न रिहाणे— गौमाता बच्चेको प्रेमसे चाटती है।

गौ अपने बच्चेके साथ जिस तरह प्रेम करती है वैसा प्रेम माता तथा पिता अपने पुत्रोंसे करें। बच्चे यह जाती का धन है। यद्यपि वह किसीके घर आता है, तथापि वह जातीका तथा राष्ट्रका धन है। इसलिये उसकी पालना परम आदरके साथ करनी चाहिये।

बन्धु भाई

११२ नेदिष्ठं आप्यं उपसद्याय मीळ्हुषे— समीपके भाई पास जाने योग्य और सहायता मांगने योग्य है।

५७१ बन्धुं सूनृताभिः प्रतिरन्ते— भाईके साथ मीठा भाषण करो। भाई भाईके साथ भाईचारेका वर्ताव होना योग्य है, उससे प्रेम भरा वर्ताव किया जाय, मीठा भाषण हो, आदरसे मिले और आवश्यक समय पर योग्य सहायता भी दी जावे। '**मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्, मा स्वसारं उत स्वसा** (अथर्व ३।३०।३)' भाई भाईके साथ तथा बहिन बहिनके साथ द्वेष न करे। ये मिलकर प्रेमसे रहें। मिलजुल कर रहें। यह वसिष्ठ मंत्रोंकी शिक्षा है।

प्रजाजनोंका हित

२६२ कृष्टयः त्वा संनमन्ते— प्रजाजन तुम्हें प्रणाम करते हैं।

२६३।३ चर्षणिप्राः पूर्वीः विशः प्रचर— प्रजाको परिपूर्ण करनेवाला होकर तू प्रजाओंमें संचार कर।

५४० असुरा अर्या क्षितिः ऊर्जयन्ती करतं— बलवान आर्य संतानको अधिक बलशाली बनाओ।

६१३ विशं विशं हि गच्छथः—प्रत्येक प्रजाजनके पास जाओ।

६२२।१-२ पञ्चक्षितीः युजाना सद्यः परिजिगाति— पंचजनोंको कार्यमें जोडती और तत्काळ प्रेरित करती है।

६२२।३-४ दिवः दुहिता भुवनस्य पत्नी जनानां वयुना अभिपश्यन्ती— द्युलोककी पुत्री विश्वकी पालन करनेवाली लोगोंके कार्योंका निरीक्षण करती है॥

६२७।१ विश्वानरः सविता देवः विश्वजन्यं अमृतं ज्योतिः उदश्रेत्— विश्वका नेता सविता देव सार्वजनिक हित करनेवाली ज्योतिका आश्रय करता है।

६४५।१ मानुषीः पंच क्षितीः बोधयन्ती—पांचों मानवोंको उषा जगाती है।

६८६ अन्यः प्रविकाः कृष्टीः धारयति— अन्य वीर प्रजाका धारण करता है।

'कृष्टयः' पद खेती करनेवालोंका बोधक है। 'चर्षणी' का भी वही अर्थ है। 'क्षिति' पद भूमिके आश्रयसे रहनेवाले किसानोंका बोधक है। '**पञ्चक्षितीः**' '**पञ्चजना**' ये पद पांच जातियोंके वाचक हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद ये पांच जातियां हैं। इन सबका हित होना चाहिये। इन पांचों मानवोंका कल्याण होना चाहिये। '**६२७ विश्वजन्यं अमृतं ज्योतिः**' सार्वजनिक सुख और तेज सबको मिलना चाहिये। कोई दीन, दुर्बल, अनाडी, निर्धन न रहे, सब लोग आनंद प्रसन्न रहें। (**६१३ विशं विशं गच्छथः**) प्रत्येक प्रजाजनके पास जाओ, उनको क्या चाहिये वह देखो और विचार करो और उनको सुखी करनेका यत्न करो। (**६४५ मानुषीः पञ्च क्षितीः बोधयन्ती**) पांचों प्रकारके मानवोंको बोध करो, ज्ञान दो, उनको सज्ञान करो, उनको उन्नतिका मार्ग दिखाओ।

इस तरह वसिष्ठ मंत्रोंमें सार्वजनिक कल्याणका विषय आया है।

गोरक्षण

१४९।१ दुघुक्षन् सुयवसे धेनुं उपसृजे—

दूध दुहने की इच्छा करनेवाला उत्तम घासके पास अपनी गौको पहुंचाता है।

१४९।३ विश्वः इन्द्रं गोपतिं आह-सब कोई इन्द्रको गौओंका स्वामी करके वर्णन करता है।

१५१।१ यः आर्यस्य सधमाः गव्याः तृत्सुभ्यः आ अनयत्-- जो इन्द्र आर्यके घरमें रहनेवाले गौओंके झुण्ड हिंसक शत्रुओंसे वापस लाता है। '**सध-माः गव्याः**'- गौवें घरमें रहती थीं। गोशालामें साथ साथ बांधी जाती थीं।

२१४।१ स्तर्यः गावः न आपः चित् पिप्युः— प्रसूत न हुई गौओंकी तरह जल प्रवाह बढते हैं।

२३४।४ नः गोमति व्रजे त्वं आभज— हमें गौओके बाडेमें स्थान दे।

२७५ यस्य रक्षिता इन्द्रः मरुतः च स गोमति व्रजे गमत्— जिसके रक्षक इन्द्र और मरुत् हैं, वह गौओंवाले बाडेमें जाता है, उसके पास बहुत गौवें होती है।

३८८।३ गोभिः अश्वैः नृभिः प्रजनय, नृवंतः स्याम— गौएं, घोडे और वीरोंसे हमें युक्त कर, इनसे हम वीरवान बनें।

५८० शचीभिः स्तर्यं अघ्न्यां अपिन्वतं— अपनी अद्भुत शक्तियोंसे वंध्या गौको दुधारू बनाया।

५८१ अघ्न्या पयोभिः तं वर्धत्— गौ दूधसे उसे पुष्ट करती है।

६१५।३ उस्रियाणां ददत्, गावः उषसं वावशंत- उषा गौओंको देती है, गौवे उषाको चाहती है।

७०० अघ्न्या त्रिःसप्त नाम बिभर्ति— गौके २१ नाम हैं।

९१९ गोसनिं वाचं उदेयं, वर्चसा मां अभ्युदिहि, त्वष्टा मे पोषं दधातु— गोसेवाकी प्रतिज्ञा मैं करता हूं, मुझे तेजस्वी कर, त्वष्टा मेरा पोषण करे।

१०८ पशून् गोपाः— पशुओंका संरक्षण कर।

वैदिक धर्ममें गोरक्षणका महत्त्व अत्यंत है। बिना गौके यज्ञ नहीं और बिना यज्ञके वैदिक धर्म नहीं। इतना गोरक्षणके साथ धर्मका संबंध है (**१४९ सुयवसे धेनुं उपसस्रजे**) उत्तम जौके घासको खानेके लिये गौको छोडता हूं। गौ बिना बंधनके घास के खेतमें जाय और पर्याप्त घास स्वेच्छासे खाय। इस तरह गौवें हृष्टपुष्ट हों।

(**२३४ नः गोमति व्रजे आभज**) हमें गौओंके बाडेमें रख। जहां गौवें हों वहां हम रहेंगे। इतना प्रेम गौओंपर होना चाहिये। जैसे घरके मनुष्य वैसी ही गौवे घरमें रहें। घरके मनुष्य और घरकी गौओंमें कोई फरक नहीं होना चाहिये। जिसका संरक्षण इन्द्र करता है, वह गौओंके बाडेमें रहता है।

वन्ध्या गौको दुधारू बनाना

अश्विनी कुमार इस वन्ध्या गौको दुधारू बनानेकी विद्याको जानते थे। उन्होंने '**स्तर्यं अघ्न्यां शचीभिः अपिन्वतं**' (**५८०**) वंध्या गौको पुष्ट करके दुधारू बनाया था। (**५८१ अघ्न्या पयोभिः तं वर्धयत्**) गौ अपने दूधसे उस कृश मनुष्यको पुष्ट करती है। मनुष्यको हृष्ट पुष्ट बनानेके लिये गौका दूध अच्छा होता है। इसलिये (**९१९ गोसनिं वाचं उदेयं**) गोसेवा की ही बात करनी चाहिये। गोसेवा करना ही मनुष्योंका धर्म है। मनुष्य पुष्ट होना चाहता है और तेजस्वी होना चाहता है। यह गौके दूधसे हो सकता है, इसलिये गौसेवा करना मनुष्योंका कर्तव्य है।

गौसे पञ्चगव्य उत्पन्न होता है जो मनुष्यके लिये अत्यंत हितकारी है। गौके शरीरसे उत्पन्न होनेवाले सभी पदार्थ हितकारी हैं। इस तरह गौ मनुष्यके लिये हितकारी है।

उत्तम दिन

९१।२ यस्य बर्हिः देवैः आससाद अस्मै सुदिनानि भवन्ति- जिसके घरके आसनपर श्रेष्ठ विबुध आकर बैठते हैं, उसके लिये उत्तम दिन आते हैं।

१५१।१ अहा सुदिना व्युच्छात्— दिन अच्छे दिन हों।

जिसके घरमें आकर ज्ञानी पुरुषार्थी वीर बैठते हैं वे दिन उस घरके लिये सुदिन होते हैं। श्रेष्ठोंकी संगतिसे दिन सुदिन बनते हैं। श्रेष्ठ पुरुषोंकी अनुकूलतासे सब दिन सुदिन होते हैं। प्रत्येक दिनको सुदिन करनेका यही एक उपाय है। आप श्रेष्ठ सत्पुरुषोंकी संगतिमें अपने दिन व्यतीत कीजिये, तो वे दिन आपके लिये सुदिन हो जायंगे। अर्थात् दुष्ट मनुष्योंके साथ जो दिन जायंगे वे दिन अच्छे होनेपर भी वे कुदिन या दुर्दिन ही कहे जायंगे।

दीर्घ आयु

२४ **आयुषा अविक्षितासः—** आयुसे हम क्षीण न हों। हम दीर्घायु बनें।

५१६।३ **क्त्वा शरदः आपृणैथे—** पुरुषार्थसे अनेक वर्षोंको पूर्णतया प्राप्त कर सकते है।

५२६ **नः जीवसे गव्यूतिं घृतेन आ उक्षतं—** हमारे दीर्घ जीवनके लिये हमारा मार्ग घीसे सिंचित हो। हमें भरपूर घी मिले।

५१९ **पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरदः शतं—** सौ वर्ष देखें और सौ वर्ष जीवें।

९४७ **सुवीराः शतहिमाः मदेम—** उत्तम वीर होकर सौ वर्ष आनन्दमें रहेंगे।

(आयुषा अविक्षितासः) आयुसे हम क्षीण न हों, हमारी आयु कम न हो। जो आयु हमें मिले वह रोगादि पीडाओंसे जर्जरित न हो। उत्तम स्वास्थ्यके साथ हमें दीर्घ आयु मिले। (क्त्वा शरदः आपृणैथे) पुरुषार्थकी भरपूर आयु हमें प्राप्त हो। हमें दीर्घ आयु मिले और उसमें हमसे भरपूर पुरुषार्थ होते रहें। घी, गौका घी दीर्घ आयु देनेवाला है इसलिये वह हमें भरपूर मिलता रहे। हम सौ वर्ष जीते रहें और वीरताके कर्म करते हुए आनंदसे रहें। हमारी दीर्घ आयु हो।

२१२ **जनेषु स्वं आयुं नहि चिकीते—** लोगोंमें अपनी आयुको कोई नहीं प्रकाशित करता।

६३८।१ **नः आयुः प्रतिरंतां —** हमें दीर्घ आयु चाहिये।

लोगोंको अपनी आयु कितनी होगी, अर्थात् मैं कितनी आयुतक जीवित रहूंगा, इसका पता नहीं होता। इसी तरह अपनी आयु इतनी है यह भी ठीक ठीक कोई नहीं बताना चाहता। पर प्रत्येक चाहता है कि हमें अतिदीर्घ आयु प्राप्त हो। केवल इच्छासे दीर्घ आयु प्राप्त होगी ऐसा मानना उचित नहीं है। (क्त्वा शरदः आपृणैथे) पुरुषार्थसे सौ वर्ष पूर्ण हो सकते हैं। इसके लिये प्रयत्न करना चाहिये। सुनियमोंका पालन करना चाहिये, मनका संयम करना चाहिये, विचार उच्चार आचार पर स्वाधीनता चाहिये। सत्पुरुषोंकी संगतिमें रहना चाहिये। मन पवित्र विचारोंसे भर देना चाहिये। इत्यादि रीतिसे रहनेवाला पुरुष दीर्घ आयु प्राप्त कर सकता है।

ईश्वर

१८७ **अस्य तस्थुषः जगतः ईशानं स्वर्दृशं अभि नोनुमः—** इस स्थावर जंगम विश्वके अपनी दृष्टीसे देखनेवाले स्वामी ईश्वरको हम प्रणाम करते हैं।

१८८ **दिव्यः पार्थिवः त्वावान् अन्यः न जातः न जनिष्यते—** द्युलोकमें तथा पृथिवीपर तुम्हारे समान दूसरा कोई सामर्थ्यवान् न हुआ और न होगा। और न इस समय है।

३८३ **अस्य विष्णोः देवस्य वयाः—** इस विष्णु सर्वव्यापक देवकी शाखाएं अन्य देव हैं। सब विश्वही उस विष्णु देवकी शाखाएं हैं।

५०४।१ **एष नृचक्षाः सूर्यः उभे उमन् उदेति—** वह मनुष्योंका निरीक्षक सूर्य दोनों लोकोंमें उदय होता है। वह सबका निरीक्षण करता है।

५०४।२ **सः विश्वस्य स्थातुः जगतः च गोपाः—** वह ईश्वर स्थावर जंगमका रक्षक है।

५०४।३ **मर्त्येषु ऋजु वृजिना पश्यन्—** वह ईश्वर मानवोंमें सरल और कुटिल को देखता है।

इससे पूर्व जो आकांक्षाएं प्रकट की हैं, सुपुत्र हो, वह वीर और ज्ञानी तथा प्रभावी हो, दीर्घायु प्राप्त हो, जीवन यशस्वी होना आदि जो मनुष्यकी आकांक्षाएं हैं वे सिद्ध होने और करनेके लिये ईश्वरकी भक्ति करना एक प्रमुख साधन है। अन्य अनेक साधन हैं पर उन सबमें ईश्वरकी भक्ति मुख्य साधन है।

ईश्वर कैसा है यह जानना, उसके श्रेष्ठ गुणोंका मनन करना और उन गुणोंको अपने जीवनमें ढालना यह साधन है। जीव का शिव बनना है, वह शिवके गुण जीवमें ढालनेसे ही होनेकी संभावना है।

वह स्थावर जंगम विश्वका स्वामी है (जगतः तस्थुषः ईशानं) सब विश्वका वह सच्चा अधिपति है। वह अधिपति अपने सामर्थ्यसे बना है, किसीकी दयासे नहीं। उसके समान दूसरा कोई सामर्थ्यवान नहीं है इसलिये वह सबका स्वामी है। वह (स्वःदृशं) अपनी दृष्टीसे सबका निरीक्षण करता है, दूसरे प्रेषितकी शिफारस उसको नहीं लगती। वह सर्वत्र है और सबको अपनी आंखसे देखता है और (मर्त्येषु

ऋजु वृजिना पश्यन्) मानवोंमें सरल कौन हैं और कुटिल कौन है यह जानता है। यह कार्य वह अपनी शक्तिसे करता है। (त्वावान् अन्यः न जातः जनिष्यते) तुम्हारे समान दूसरा कोई न समर्थ हुआ और न है तथा न कोई होगा। वह स्थावर जंगमका रक्षक है और सब अन्य देव तथा पदार्थ वृक्षके आश्रय से शाखाएं रहती हैं वैसे हैं। संपूर्ण विश्व इसीके आश्रयसे रहता है। यह सबका उपास्य है।

ईश्वर उपासना

१४८।१-२ त्वा पस्पृधानासः देवयन्तीः मन्द्रा गिरः उपस्थुः— तुम्हारे वर्णन करनेकी स्पर्धा करनेवाली देवत्व प्राप्त करनेकी इच्छुक आनंद बढानेवाली हमारी वाणियां तुम्हारी उपासना करती हैं।

१९७।१ ते महिमानं रजांसि न विव्यक्— तेरी महिमाको रजोगुणी लोक नहीं जान सकते। तेरी महिमाको ये लोक नहीं जान सकते।

२०९ मन्यमानस्य ते महिमानं नू चित् उत् अश्नुवन्ति— सन्माननीय ऐसी तेरी महिमाका कोई पार नहीं लगा सकते। तुम्हारी संपूर्ण महिमा कोई जान नहीं सकता।

१०९ ते राधः वीर्यं न उत् अश्नुवन्ति— तेरे धन और पराक्रमका पार नहीं लग सकता।

१११ महे उग्राय वाहे वाजयन् एष स्तोमः अधायि— बडे उग्र वीरके अर्थात् तुम्हारे प्रभावका वर्णन करनेवाला यह काव्य किया है। यह प्रभुकी स्तुति है।

११७।१ हर्यश्वाय शूषं कुत्साः— उत्तम घोडोंको वेगवान् साधनोंको अपने पास रखनेवाले वीरकी प्रशंसा गाते हैं।

११९ नवीयः उक्थं जनये— नवीन स्तोत्र मैं बनाता हूं। **नृषत् शृणवत्—** वह मनुष्योंमें बैठकर सुने।

१२६ क्षमि अधि यत् विरूपं अस्ति, तस्य जगतः चर्षणीनां राजा इन्द्रः— पृथ्वीपर जो विरूप या सुरूप है उस जंगम प्रजाओंका राजा इन्द्र है। स्थावरका भी वही प्रभु है।

१४०।१ ते महिमा व्यानट्, ऋषिणां ब्रह्म पासि— तेरी महिमा जिनमें फैली है उन ऋषियोंके काव्योंका संरक्षण तू करता है।

१९६।१ वः ब्रह्मणां पितॄणां जुष्टी— तुम्हारे काव्यसे पितरोंकी प्रसन्नता होती है। तुम्हारे काव्योंका गान सुननेसे सब आनंदित होते हैं।

१९६।४ शक्करीषु बृहता रवेण इन्द्रे शुष्मं आदधातन— बडे स्वरसे सामगान करके इन्द्रका यशगान करो। उच्च स्वरसे प्रभुका यश गाओ।

इस तरह वेदमें तथा वसिष्ठ ऋषिके मंत्रोंमें ईश्वरके गुणोंका वर्णन अर्थात् उस प्रभुकी महिमाका वर्णन है। यह इसलिये किया है कि मनुष्य इस आदर्श पुरुषका वर्णन देखे और सुने और वैसा बननेका यत्न करे।

ईश्वर अपने सामर्थ्यसे सब विश्वका राज्य करता है। इससे स्पष्ट है कि जिसमें सामर्थ्य होगा, वह इस पृथ्वीपर राज्य करेगा। ईश्वरसे अधिक सामर्थ्यवान् कोई दूसरा नहीं है, वैसे ही हम अद्वितीय सामर्थ्यवान बनें तो हम भी अपने स्थानपर टिके रहेंगे। सामर्थ्यसे सब कोई टिक सकता है। वह ईश्वर सबका निरीक्षण करता है हम भी अपने आधीन जो है उसका निरीक्षण करें और योग्य कौन है और अयोग्य कौन है यह जाने। इस तरह ईश्वरके गुण अपने अन्दर ढाले जाते हैं। यही उपासनासे लाभ होता है।

स्वामी बनकर रहो

१७ ईशानासः पियेध भूरि आहवनानि जुहुयाम— हम स्वामी बनें और यज्ञमें बहुत हवनीय द्रव्योंका हवन करें। धनके स्वामी बनो और धनका समर्पण यज्ञमें बहुत करो।

यहां ' ईश ' बन कर रहो। जिसमें ईशन शक्ति है वह ईश अथवा ईशान है। स्वामी बनना, प्रभु बनना, शासक बनना, उसके अन्दर वसना, उसको घेरना ये सब भाव ' ईश ' बननेमें हैं। रहना, वसना, घेरना, शासन करना इतना जो नहीं कर सकता वह न प्रभु बन सकता है और न ईश बन सकता है। इस समयतक जो शासक बने हैं, उनमें शासन शक्ति थी, राज्यमें वसने घेरने, शासन करनेकी शक्ति थी, इसीलिये वे शासक बने हैं। अनधिकारीको किसीने शासकके स्थानपर रखा भी तो उसमें शासन शक्ति, ईशन शक्ति न रही तो वह वहां टिक नहीं सकेगा और जिसमें शासक शक्ति है, वह किसी न किसी रूपमें शासक बन ही जायगा, इसीलिये कहा है कि पहिले ' ईश '

बनो और पश्चात् बहुत दान दो। जगत्का भला करनेके लिये बहुत अर्पण करो।

मातृभूमि

३७४ वसवः देवाः उमया रन्त— धनवान निवास कर्ता विबुध मातृभूमिके साथ रमते रहते हैं।

जो निवास करानेवाले होते हैं उनको वसु कहते हैं। (ये निवासयन्ति ते वसवः) जनताका निवास सुखका करनेमें जो यत्न करते है, सहायक होते हैं वे ' वसु ' हैं। ये वसुदेव सबका निवास करानेवाले हैं। ये (उमया रन्त) भूमिके साथ रमते हैं। मातृभूमिके साथ रहनेमें प्रसन्न होते हैं। जो मातृभूमिके साथ रहनेसे प्रसन्न रहते हैं वेही जनताका सुखसे निवास करनेवाले होते हैं। जो अपनी मातृभूमिका द्रोह करेंगे, जो मातृभूमिके शत्रुओंका हित करनेके लिये तत्पर रहेंगे वे जनताका निवास सुखमय करनेवाले नहीं होंगे।

' वसवः उमया रन्त ' निवास करानेवाले मातृभूमिके साथ रमते हैं। मातृभूमिके साथ रमनेवाले, मातृभूमिकी भक्ति करनेवाले जनताका निवास मातृभूमिमें सुखसे हो, इसके लिये यत्नवान् होंगे। अथर्ववेदमें काण्ड १२।१ में मातृभूमिक सूक्त है। उस सूक्तमें ६२ मंत्र हैं। उन मंत्रोंका मनन पाठक यहां करें। ' **माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः** ' ' **तुभ्यं बलिहृतः स्याम** ' यह मातृभूमि हमारी है और मैं उसका पुत्र हूं। मैं इस माताके लिये अपना बलि देता हूं। ये उस सूक्तके मंत्र हैं। यह सब सूक्त यहां देखने योग्य है।

संघटना

९१ गणेन ब्रह्मकृतः मा रिषण्यः— संघके द्वारा ज्ञानका प्रसार करनेवालोंका नाश न कर। संघसे ज्ञान प्रचार करनेवालोंकी सहायता करो।

१९८।१-२ गो-अजनासः दण्डा इव भरताः परिच्छिन्नाः अर्भकासः आसन्— गौएं चलानेके दण्डे जैसे भरत लोग निर्बल, तथा बालक जैसे थे। असंघटित और बिखरे हुए थे।

१९८।३-४ तृत्सूनां पुरएता वसिष्ठः अभवत्, आत् इत् तृत्सूनां विशः अप्रथन्तः— तृत्सुओंका नेता वसिष्ठ हुआ, तबसे तृत्सुओंकी प्रजाएं बढ गयीं, उन्नत हुई, संघटित हुई, समर्थ बनी।

३७५ विश्वेदेवाः सधस्थं अभिसन्ति— सब देव एक स्थानपर रहते हैं। नियत समय एक स्थानपर आकर बैठना यह संघटनाके लिये आवश्यक है।

४०२ सधमादः अ-रिष्टाः— संघटित होनेवाले विनष्ट नहीं होंगे।

६३१।१ समाने ऊर्वे अधिसंगतासः— वे एक ही बडे कार्यमें मिलकर संघटित हुए।

६३१।२-३ संजानते, ते मिथः न यतन्ते— जो ज्ञानी होते हैं वे आपसमें लडते नहीं।

६७१।१ अप्रति भेदं वधनाभिः वन्वन्ता— अप्राप्त भेदको वधसे नष्ट करो। आपसमें भेद बढजानेके पूर्व ही उसको दूर करो, नष्ट करो। आपसमें फूट रहने न दो।

७४७ सबाधः विप्राः वाजसातये ईळते— समान दुःखमें रहे ज्ञानी बलके लिये प्रार्थना करते हैं। समान दुःखमें रहनेवाले संघटित होते हैं और अन्न तथा बल प्राप्त करते हैं।

९१५ नः सर्व इत् जनः संगत्या सुमना असत्— हमारे सब लोग अपनी संघटना करनेके लिये उत्तम मनसे मिलते रहते हैं।

वसिष्ठ मन्त्रोंमें संघटनाके विषयमें ऐसे उत्तम निर्देश मिलते हैं। (**९१) गणेन मा रिषण्यः**) संघमें, गणमें रहनेसे तुम्हारा नाश नहीं होगा। यह संघटनाका पहिलाही सूत्र यहां कहा है। गणशः अपनी संघटना बलवती करनी चाहिये। प्रथम (**भरताः परिच्छिन्ना अर्भकासः आसन्**) भारत लोग आपसमें असंघटित थे, इसलिये वे बालक जैसे निर्बल थे। परिच्छिन्न होना, छोटे छोटे फिरकोंमें समाजका बंट जाना यह निर्बलताका चिन्ह है। इस कारण, समाजको परिच्छिन्न, छिन्न विच्छिन्न नहीं होने देना चाहिये। (**पुरएता वसिष्ठः अभवत्**) फिर उन भारतीयोंका नेता वसिष्ठ हुआ। वसिष्ठ उसको कहते हैं कि (वासयति इति वसिष्ठः) जो संघटना करनेमें चतुर होता है, वसानेमें चतुर हो। भारतीयोंको ऐसा उत्तम पुरोहित मिला और उन्होंने जो भारतीय बालक जैसे निर्बल थे उनको बलवान और सुसंघटित बनाया। तब भरतोंकी (विशः अप्रथन्त) प्रजाएं सामर्थ्यवान् बनी और बढने लगी। सामर्थ्यवान् होगयी।

जो (**सध-स्थं अभिसन्ति—**) एक स्थानपर

आकर नियत समयपर बैठते और अपनी संघटना करनेका विचार करते हैं, वे (**सध-मादः अ-रिष्टाः**) एक स्थानपर जमा होनेवाले, संघटित होकर अपने आपको विनाशसे बचाते हैं। संघटन होनेसे विनाशसे बच सकते हैं। अपने अन्दरका भेद दूर करना, अपने अन्दर एकात्मता उत्पन्न करना और एक कार्यमें अपने आपको बांध लेना ये संघटनाके लिये आवश्यक है। (**समाने ऊर्वे अधिसंगतासः**) एक बडे कार्यके अन्दर संमिलित होना, उस कार्यके लिये अपने आपको समर्पित करना यह संघटनके लिये अत्यंत आवश्यक है। (**सबाधः विप्राः**) एक बाधामें एक आपत्तिका अनुभव जिनको होगा, वे उस बाधाको दूर करनेके लिये संघटित होंगे। इसलिये जिनको संघटित करना है, उन सबको एक कष्टमें वे सब हैं, सबके संघटित होनेसे वह सबको सतानेवाला भय दूर हो सकता है, इसका यथार्थ ज्ञान देना चाहिये। इससे उन सबकी उत्तम संघटना होगी। (**सर्वः जनः संगत्यां सुमनाः**) संघटित होनेवाले सब लोग अपने संघटनमें उत्तम मनसे संमिलित हों। किसीका किसीके विषयमें विपरीत मनोभाव न हो। इस तरह संघटित समाज करनेके विषयमें वसिष्ठके मंत्रोंमें सूचना मिलती है। जो सदा ध्यानमें धरने योग्य है।

अग्रणी कैसा हो !

१ नरः दूरेदृशं प्रसस्तं गृहपतिं अथर्युं अग्निं जनयन्तः—नेता लोग अपनेमेंसे दूरदर्शी प्रशंसायोग्य गृहस्थी प्रगतिशील अग्रणीको प्रमुख बनाते हैं।

अग्रणी वह बने कि जो दूरका देखनेवाला, प्रशंसायोग्य कार्य करनेवाला, गृहस्थ धर्म पालन करनेवाला, अचंचल अर्थात् स्थिर पद्धतिसे अपना कर्तव्य करनेवाला, अग्निके समान तेजस्वी तथा अपने प्रकाशसे दूसरोंको मार्ग बतानेवाला हो।

यहां अग्रणी गृहपति हो ऐसा कहा है। ब्रह्मचारी या संन्यासी नहीं। क्योंकि ब्रह्मचारी और संन्यासी को आगापीछा नहीं होता, इसलिये ग्रामकार्य अथवा राष्ट्र कार्यमें वह ठीक तरह अपना कर्तव्य नहीं कर सकता, पर जो गृहस्थी होता है उसके सर्वत्र संबंधी होते हैं, इसलिये वह जानता है कि अपना उत्तरदायित्व क्या है। इसलिये अध्यक्ष अथवा नेता गृहस्थी ही होना उचित है।

दूरदर्शी प्रशंसायोग्य गृहस्थी प्रगतिशील तेजस्वी अग्रणी हो।

८ वसिष्ठ शुक्र दीदिवः पावक अग्ने— जनताका निवास करानेवाला, बलवान् वीर्यवान्, तेजस्वी, पवित्रता करनेवाला अग्रणी हो।

१७ सुक्रतवः शुचयः धियांधाः वयं नराशंसस्य यज्ञतस्य महिमानं उपस्तोषाम-उत्तम कर्म करनेवाले, पवित्र बुद्धिमान होकर हम सब मानवोंमें प्रशंसित और पूजनीय नेताकी महिमाका वर्णन करें। हम उत्तम कर्म करें, पवित्र बनें, ज्ञानी बनें और श्रेष्ठ महात्माका ही वर्णन करें।

१८ ईळेन्यं असुरं सुदक्षं सत्यवाचं अध्वराय सदं इत् सं महेम— प्रशंसनीय, बलवान, उत्तम दक्ष, सत्य भाषण करनेवाला जो है उसी नेताका हम सदा वर्णन करते हैं।

५१।१ यः क्रत्वा अमृतान् अतारीत् सः देवकृतं योनिं आससाद— जो अपने पुरुषार्थसे दिव्य विबुधोंका तारण करता है वह देवोंके बनाये श्रेष्ठ स्थानमें विराजता है। वह मुख्य स्थानपर बैठता है। वही नेता होता है।

५८ वैश्वानरः वरेण वावृधानः मानुषीः विशः अभि विभाति— सब मनुष्योंका श्रेष्ठ नेता श्रेष्ठ साधनसे बढता हुआ अपने मानवी प्रजाजनोंको अधिक प्रकाशित करता है। सब लोगोंका अग्रणी अपना सामर्थ्य बढाकर अपने अनुयायियोंका भी तेज बढाता है।

६९।१ नृतमः अपाचीने तमसि मदन्तीः शचीभिः प्राचीः चकार— मनुष्योंमें श्रेष्ठ वह है कि जो अज्ञानान्धकारमें पडे रहनेपर भी उसीमें आनंद माननेवाले लोगोंको शक्तियोंसे संपन्न उदयोन्मुख करता है।

६९।२ वस्वः ईशानं अनानतं पृतन्यून् दमयन्तं गृणीषे— धनके स्वामी उन्नत और सेनासे हमला करनेवाले शत्रुका दमन करनेवाले नेताकी प्रशंसा करो।

७१।१ विश्वे जनासः शर्मन् यस्य सुमतिं भिक्षमाणाः— सब लोग अपनी सुरक्षाके सुखके लिये जिसकी सद्बुद्धिको चाहते हैं वह श्रेष्ठ पुरुष है।

७१।२ विश्वे जनासः एवैः यं उपतस्थुः— सब लोग अपने कर्मोंके साथ जिसके पास पहुंचते हैं वह श्रेष्ठ पुरुष है। अपने कर्मोंकी परीक्षा यहां होगी, ऐसा जिसके संबंधमें सब मानते हैं वह श्रेष्ठ है।

७१।३ वैश्वानरः वरं आससाद— सबका जो श्रेष्ठ नेता है, वह श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करता है। श्रेष्ठ स्थानमें विराजता है।

७३ सहमानं देवं अग्निं नमोभिः प्रहिषे— शक्तिमान दिव्य अग्रणीको मैं नमस्कार करता हूं। उसका मैं सन्मान करता हूं।

७६।१ विचेतसः मानुषासः अध्वरे रथिरं सद्यः जनन्त— ज्ञानी मनुष्य हिंसारहित शुभकर्ममें रथमें बैठकर जानेवालेको तत्काल नियुक्त करते हैं। मुख्य स्थानमें रखते हैं। नेता बनाते हैं।

७६।२ यः एषां मन्द्रः विश्पतिः मधुवचा ऋतावा विशां दुरोणे अधायि— जो इन लोगोंका आनन्ददायक प्रजापालक है वह मधुरभाषणी सत्यपालक प्रजाओंके घरमें सन्मानके स्थानमें स्थापित होता है। बैठता है।

९५।३ सुसंदृशं सुप्रतीकं स्वञ्चं हव्यवाहं मनुष्याणां अरतिं अच्छ यन्ति— सुन्दर, सुडौल, प्रगतिशील, बलवान् मानवोंके नेताके पास मनुष्य जाते हैं। उनके साथ रहें और उन्नतिके कार्य करें।

९८।४ इह प्रथमः निषद— यहां पहिला मुख्य बनकर रह। नेताको मुख्य स्थानपर बिठलाना योग्य है।

१०६।१ विश्वशुचे धियंधे असुरघ्ने अग्नये मन्म धीतिं प्रभरध्वम्—विश्वमें तेजस्वी बुद्धिमान पुरुषार्थी दुष्टोंका नाश करनेवाले अग्रणी नेताका सन्मान करो।

१०६।२ प्रीणानः वैश्वानराय हविः भरे— मैं सन्तुष्ट होकर सबके नेताके लिये अर्पण करता हूँ, सन्मान करता हूं।

१०७।२ जातवेदः वैश्वानरः— जो ज्ञानी है वह विश्वका नेता होता है।

१०८।१ जातः परिज्मा इर्यः— प्रकट होते ही चारों ओर घूमनेवाला नेता सबको प्रेरणा करता है।

११३ कविः गृहपतिः युवा पंचचर्षणीः दमे दमे निषसाद--ज्ञानी गृहस्थ तरुण पांचों प्रजाजनोंके घरोंमें जाकर बैठता है।

२४१।१ तव प्रणीती नॄन् रोदसी सं निनेथ— तुम्हारी पद्धति मानवोंको इस विश्वमें सम्यक् रीतिसे उन्नतिकी ओर ले चलती है।

यहां प्रायः अग्निके वर्णनमें ही नेताका वर्णन किया है। अग्नि ही अग्रणी है। अग्-र-णी, अग्-नी, अग्नि। इस तरह अग्नि ही अग्रणी अथवा अग्रणी ही अग्नि है। अग्नि अपने प्रकाशसे सब विश्वको मार्गदर्शन करता है और उनको उन्नतिके मार्गसे चलाता है। इसलिये अग्नि ही अग्रणी है। इस कारण अग्निके वर्णनमें 'अग्रणी' के गुण दिये हैं।

अग्रणी (दूरे-दृशः) दूरदर्शी, दूरका देखनेवाला, भविष्यमें क्या होगा, इसकी जिसको यथार्थ कल्पना है, ऐसा (प्रशस्तः) प्रशंसित, प्रशंसाके योग्य, सबको आदरणीय (अ-थर्युः) जो चंचल नहीं, जो क्षणक्षणमें बदलता न हो, जो स्थायीरूपसे उन्नतिके कार्य करता हो, (अग्निः) जो प्रगतिशील है, अपने तेजसे अज्ञानान्धकारको दूर हटाता है, मार्ग बताता है और प्राप्तव्यस्थान पर पहुंचाता है, बीचमें ही नहीं छोडता, (वसिष्ठः) जो अनुयायियोंको सुखपूर्वक निवास कराता है, जो (पावकः) पवित्रता करनेवाला है, अन्तर्बाह्य शुद्धता करनेवाला है, (शुक्रः) जो बलवान्, वीर्यवान् तथा पराक्रमी है। (दीदिवः) जो तेजस्वी है, प्रकाशमान है, (सुक्रतुः) उत्तम कर्म करनेवाला, (शुचिः) जो शुद्ध है, (धियं धाः) जो बुद्धिमान है, योग्य समय पर योग्य संमति देता है, (असु-रः) जो बलवान् है, प्राणके बलसे सामर्थ्यवान् है, (सु- दक्षः) जो उत्तम दक्ष है, प्रत्येक कार्य उत्तम दक्षतासे जो करता है, शिथिलता जिसमें होती नहीं, (सत्य-वाक्) जो सत्यभाषण करता है, जो असत्य भाषण करता नहीं, (वैश्वा-नरः) सब नरोंका सब मनुष्योंका जो नेता है, (नृ-तमः) सब मानवोंमें जो अत्यंत श्रेष्ठ है, (ईशानः) शासन शक्तिसे जो युक्त है, जो प्रमुख होने योग्य है, (अनानतः) जो उच्च है, जो श्रेष्ठ है, (पृत-न्यून दमयन्) जो शत्रुसेनाका दमन कर सकता है, शत्रुसेनाका पराभव करनेवाला, (सहमानः) शत्रुका पराभव करनेवाला, शत्रुका आक्रमण रोकनेवाला, (वि-चेताः) जो विशेष ज्ञानी है, सामर्थ्यवान चित्तवाला, (अ-ध्वरे रथिरं) हिंसारहित, अकुटिल श्रेष्ठ कर्ममें सत्वर जानेवाला, (मन्द्रः) आनंददायक, प्रसन्नचित्त, (मधु-वचाः) मधुर भाषण करनेवाला, (ऋतावा) सरल स्वभाव, सत्य कर्मको करनेवाला, (विश्-पतिः) प्रजाका उत्तम पालन करनेवाला, (सु संदृशं) सुन्दर दीखनेवाला, (सु-प्रतीकं) उत्तम आदर्शवान, (स्वञ्चं,सु-अञ्चं) प्रगतिशील, (मनुष्याणां अरतिः) मनुष्योंको उच्च स्थान तक

Regd. No. B. 1463

ऋग्वेद-संहिता

इस ग्रन्थमें प्रारभमें संस्कृत-भूमिका है, उसके पश्चात् **मण्डलानुक्रमणिका** तथा **अष्टकानुक्रमणिका** है, पश्चात् **ऋषिसूची तथा देवता-सूची** है। इसमें मण्डलों और अष्टकोंका क्रम तथा सूक्तक्रम भी दिया है। इतनाही नहीं, पर इस सूचीमें प्रत्येक सूक्तमें आये देवता कौनकौनसे मन्त्रमें हैं यह भी दर्शाया है। इसी तरह इसकी टिप्पणीमें वे देवता दिये हैं जो मन्त्रोंमें तो हैं, पर सर्वानुक्रमणीमें दिये नहीं हैं। यह सूची मन्त्रक्रमके अनुसार है, इसलिये प्रत्येक मंत्रमें कौनसा देवता है, यह हरकोई देख सकता है। इसके नंतर **अकारक्रमसे ऋषिसूची** है। प्रत्येक ऋषिके कितने मंत्र हैं और वे कहां हैं यह सब यहां दर्शाया है। इस सूचीमें इन ऋषियोंके गोत्र दिये हैं और प्रत्येक गोत्रमें कितने ऋषि हैं यह भी इसी सूचीमें है।

इसके पश्चात् **अनुवाक-सूत्र** स्पष्टीकरणके साथ दिया है। प्रत्येक अनुवाकमें कितने मंत्र हैं और वे कहां हैं, यह सब यहां बताया है। इसी तरह अध्यायानुक्रमणी वैसे ही स्पष्टीकरणके साथ यहां दी है।

इसके नंतर '**सांख्यायन-संहिता**' का पाठक्रम तथा '**बाष्कल संहिता**' का पाठक्रम दिया है।

इसके पश्चात् **संपूर्ण ऋग्वेद-संहिता** मण्डल और अष्टकोंके साथ दी है। इसमें **प्रत्येक मंत्र स्वतंत्र और पृथक् पृथक् छपा है। तथा मंत्रके चरण, मंत्रके अर्धभाग, मंत्रके बहुतसे पद पृथक् पृथक् दिये हैं** और प्रत्येक सूक्त पृथक् पृथक् स्पष्ट दर्शाया है। प्रति सूक्तके प्रारंभमें ऋषि, देवता और छन्द दिये हैं और मंत्रोक्त-देवता भी कई स्थानोंपर दर्शायी हैं।

इसके बाद मण्डलान्तर्गत तथा अष्टकान्तर्गत **सूक्त-संख्या वर्गसंख्या, मन्त्रसंख्या** तथा **अक्षरसंख्या** दर्शानेवाले कोष्टक दिये हैं।

नंतर सब **परिशिष्ट** दिये हैं तथा उनके पाठभेद भी दिये हैं। ऋग्वेदसंहिताके अन्यान्य शाखाओंमें जो अधिक सूक्त मिलते हैं वेही ये परिशिष्ट हैं। ये कुल ३७ हैं।

इसके पश्चात् **अष्टविकृतियाँ**, उनकी बनानेकी विधिके साथ दी है। इनकी विधि जानकर पाठक अन्याय मंत्रोंकी भी विकृतियाँ स्वयं कर सकते हैं। यहां **पञ्चसंधि** भी दिये हैं जो विशेष महत्त्वके हैं।

इसके पश्चात् **कात्यायनमुनि**- विरचित **सर्वानुक्रमणिका** टिप्पणीके साथ संपूर्ण दी है। उसके बाद **शौनकाचार्यकृत अनुवाकानुक्रमणी** है। इसके बाद छन्दोंके उदाहरण लक्षणोंके साथ दिये हैं। इसमें ११ **छन्द** और उनके अनेक **उपछन्द** उदाहरणोंके साथ दिये हैं। इसके देखनेसे किस मन्त्रका कौनसा छन्द है इसका ज्ञान हो सकता है।

इसके बाद अकारक्रमसे ऋग्वेदके संपूर्ण **मंत्रोंकी सूची** है। ये मंत्र अन्य वैदिक संहिताओंमें कहां हैं, उनका भी पता यहां दिया है। इससे ऋग्वेद मंत्र संहिताओंमें कहां हैं इसका ज्ञान हो सकता है।

इतनी सूचियोंके साथ इतने परिश्रमसे यह ऋग्वेद-संहिता छापी है। इस समय जो ऋग्वेदके ग्रंथ हैं उनमेंसे किसीमें इतने ज्ञानके साधन नहीं हैं। वेदका अनुसंधान करनेवालोंके लिये यह एक अनुपम साधन है। इसकी कुल पृष्ठसंख्या १०५० है। मूल्य केवल ६) रु. व्य १॥) है।

मंत्री— स्वाध्याय-मण्डल, 'आनन्दाश्रम,' पारडी (जि. सूरत.)

मुद्रक और प्रकाशक- वं० श्री० सातवलेकर, बी. ए., भारत-मुद्रणालय, आनन्दाश्रम, किल्ला-पारडी (जि. सूरत)